# भूमिका/प्रस्तावना :

## "अइतऽ छनो भर खातिर ए कन्हाई"

## (भोजपुरी प्रबंधकाव्य)

This Hindi Bhumika is one of four prefaces namely भूमिका in Hindi,Preface in English,आपन बात in Bhojpuri and रचनाप्राक्कथनम् in Sanskrit pertaining to the भोजपुरी प्रबंधकाव्य-अइतऽ छनो भर खातिर ए कन्हाई written by me-श्री भगवान मिश्र श्रीदास.The said Bhojpuri Epic is based on entire दशम स्कन्ध पूर्वार्ध of SrimadBhagwat Mahapurana written by the great Ved Vyas, SriKrishnadwaipayan.

श्रीमद्भागवत एवं ब्रह्मवैवर्तपुराण पर आधारित मेरा यह भोजपुरी महाकाव्य भोजपुरी साहित्य में अपने तरह की अकेली रचना है,जिसके बारे में विभिन्न रचनाधर्मियों ने मुझे अवगत कराया है। परात्पर ब्रह्म श्रीराधाकृष्ण की कृपा से ही ऐसा सम्भव हुआ है। उल्लेखित चारों भाषाओं में मेरी स्वलिखित भूमिकाओं में उक्त महाकाव्य के अनुशयी तथ्य एवं कथ्य अपने अपने वैशिष्ट्यों के कारण ध्यातव्य,रोचक एवं पठनीय हैं। महाकाव्य में प्रयुक्त विभिन्न छन्द लीक से कुछ हटकर,जीह्वास्निग्धतानुपठितव्य एवं अपनी सामग्री को स्वतः व्यक्त करनेवाले हैं,ऐसा मेरा तटस्थ अनुसंधान है। आगे आपकी यह महती एवं अपने वैविध्यपूर्ण तथा समालोचकीय बृहदायाम में अद्वितीय संस्था का समीक्षकीय दृष्टिकोण ही भोजपुरी साहित्य में इसके महत्व एवं उपादेयता का संकेत कर सकता है।

श्रीभगवान मिश्र श्रीदास

## क.भूमिका

''अईतऽ छनो भर खातिर ए कन्हाई '' शीर्षक भोजपुरी प्रबन्धकाव्य आपके समक्ष प्रस्तुत है। महाकवि कालिदास के कालजयी संस्कृत नाटक 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' पर आधारित अपनी पहली भोजपुरी रचना 'शकुन्तला–भोजपुरी गीतिकाव्य' को लिखते समय वर्ष 2012 में ही श्रीहरि की प्रेरणा से मेरे मन में उनुकी कुछ लीलाओं को भोजपुरी में ही निबद्ध करने का संकल्प उठा। कहना न होगा कि श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध में वर्णित श्रीहरि की मनोहारी लीला से बढ़कर सुन्दर और दुसरा कौन सा उपजीव्य मेरी लेखनी के उक्त संकल्प की पूर्ति के लिए हो सकता था। अस्तु! उस समय मैंने रासपंचाध्यायी को भोजपुरी में लिखना प्रारम्भ किया एवं लगभग पूरा होने के बाद प्रातः स्मरणीय अपने आध्यात्मिक पथप्रदर्शक श्री लक्ष्मीवेंकटेश्वरदेवस्थानम्,भक्तिवाटिका,पूर्वांचलपीठ,देवरिया के पीठाधीश्वर श्रीरामानुजाचार्य श्रीराजनारायणाचार्यस्वामीजी को फोन कर उक्त रचना के एक गीत ' चित हरलऽ ए चितचोर, घरे मन का लागी'' को गाकर सुनाया जिसे सुनकर स्वामीजी ने अपनी प्रसन्नता व्यक्त की और मुझसे पूछा कि मैंने व्यासजी के मंगलाचरण पर क्या लिखा है। इस पर आदरणीय स्वामीजी से कहा कि मैंने तो केवल रासपंचाध्यायी को ही लिखा है। यह सुनकर स्वामीजी ने तो मुझे कुछ नहीं कहा, परन्तु मुझे लगा कि यह आदरणीय स्वामीजी के माध्यम से उन्हीं नन्दनन्दन वासुदेव श्रीकृष्ण का व्यासप्रणीत श्रीमद्भागवत के यथावांक्षित स्कन्धानुशयी प्रसंगों को समाहितकर गाोपियों के साथ अपनी दिव्यप्रीतिकथा को हमलोगों की प्रियभाषा भोजपुरी में प्रबंधकाव्य की रचना में प्रवृत्त होने का मुझे संकेत है। तदनुसार मैंने श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कन्ध के प्रथम खण्ड,प्रथम अध्याय के मंगलाचरण में भागवतजी की प्रस्तावना (Preamble) से मूल कथा की शुरूआत की एवं तृतीयस्कन्धस्थ लोकपितामह ब्रह्मा की उत्पत्ति,उनके द्वारा भगवान की स्तुति आदि के उपरान्त द्वितीय स्कन्ध में ब्रह्माजी का भगवद्धामदर्शन, भगवान से चतुःश्लोकी भागवत की प्राप्ति,भगवान के संकेतानुसार सृष्टिकार्य के श्रीगणेश की कथा का संक्षिप्त समावेश कर दशम स्कन्ध पूर्वार्ध की लगभग पूरी कथा को उपजीव्य बनाकर इस प्रबंधमहाकाव्य की रचना में प्रवृत्त हुआ। इस प्रबंधकाव्य में मैंने भगवान के जन्म से लेकर भगवान की विभिन्न हृदयस्पर्शी लीलाओं, वेणुगीत,रासपंचाध्यायी,युगलगीत,कंश उद्धार आदि सहित कुबरी यानि सैरन्ध्री कुब्जा एवं अक्रूरजी के घर जाने की कथा का समावेश यथाशक्य सुस्पष्टता एवं पदप्रवाह की स्निग्धता के साथ करने का प्रयास किया है। यहाँ उल्लेख करना चाहता हूँ कि भागवतीय क्रम में महारास, भगवान के सखा उद्धवजी का ब्रज जाकर गोपियों से वार्तालाप, गोपियों में से एक गोपी,जो शायद श्रीकृष्ण की स्वाह्लादस्वरुपा परा प्रेयसी किशोरी राधा हों, पर जिनका नामतः उल्लेख भागवतजी में नहीं है,का उद्धव के समक्ष अपने पास मंडराते हुए एक मधुप को निमित्त बनाकर अपने प्रियतम कान्हा को अपनी विरहादि पीड़ा का उलाहना देते हुए भ्रमरगीत सुनाने आदि के प्रसंग के बाद भगवान का कुब्जा एवं अक्रूरजी के घर जाने की कथा आती है। इसके बाद दशम स्कन्ध पूर्वार्ध की भागवतीय कथा विराम लेती है। परन्तु इस प्रबंधकाव्य के वर्ण्य विषय के चरमोत्कर्ष (climax)–के अनुरुप यानि गोपियों की उनके प्रियतम श्रीकृष्ण कन्हाई का सन्देश लेकर आये उद्धव से अपने अदम्य एवं अनिन्दित प्रेम–विरह की बातचीत, भ्रमरगीत आदि से संबंधित बत्तीसवें सर्ग के पहले तीसवें सर्ग में मैंने भगवान की कुब्जा एवं अक्रूरजी के घर जाने की कथा को रखा है जो भागवतीय क्रम से कुछ भिन्न है। इसके लिए मैं सुधी पाठकों एवं भागवतानुरागियों से क्षमाप्राथी हूँ। अंतिम तैंतीसवें सर्ग में समस्त गोपियों की सारभूता श्रीकिशोरी राधा की अपने प्रियतम श्रीकृष्ण के प्रति अपरिमित विरह–वेदना के उल्लेख के लिए मैंने ब्रह्म–वैवर्त पुराण की तत्संबंधी कथानक को अपनी भावनाओं के अनुरुप उपजीव्य बनाया है, जिसमें इस प्रबंध के नायक श्रीकृष्ण मथुरा से कुछ ही दूरी पर सिसकती गोपियों से छणभर के लिए भी नहीं मिलने जाने की स्वनिर्धारित नियतिवश राधा,गोपियों के प्रेम–विरह से आर्द्र होकर छिपकर एकान्त में अश्रुधारा बहाते हैं और समग्रता में मेरा प्रबंधकाव्यं अंतिम–तैंतीसवें सर्ग में विश्राम लेता है। इस प्रबंधकाव्य के तैंतीस सर्गो में कुल 3125–तीन हजार एक सौ पचीस पद विभिन्न भोजपुरी छन्दों में निबद्ध हैं।

भगवान की अहैतुकी कृपा से उक्त प्रबंध को अपनी मातृभाषा भोजपुरी में लिखकर मैं अपार संतोष एवं आनन्द का अनुभव करता हूँ। भागवतजी को उपजीव्य बनाकर हिन्दी सहित भारत की कई भाषाओं एवं मेरी



www.bhojpurisahityangan.com

अपुष्ट जानकारी में भोजपुरी में भी एक–दो रचनाएँ आई हैं। लेकिन समस्त विश्व में भोजपुरी की एक भावस्निग्ध, प्रभावशाली, व्यापक एवं साहित्य की सभी विधाओं में समर्थ भाषा के रूप में प्रगल्भता की अनुभूति एवं उसमें श्रेण्य एवं समसामयिक साहित्य सृजन की सराहनीय अभिभावकीय छाया में अपनी इस प्यारी भाषा में शास्त्रीय लेखन की चाह का इस प्रबंधकाव्य के रुप में प्रकटीकरण करके मुझे अतीव प्रसन्नता हो रही है। ऐसा लग रहा है कि इस भाषा में श्रुति–शास्त्र के प्रगल्भ विषयों तथा श्रेण्य शास्त्रीय साहित्यिक लेखन के क्षेत्र में भी अपार क्षमता,लचीलापन एवं अभिव्यक्ति–पटुता है। इस प्यारी भाषा की इन अप्रतिम विशिष्टताओं को ध्यान में रखकर अधिक से अधिक प्रबुद्ध लेखक शास्त्रीय–श्रेण्य उपजीव्य विषयों पर अपनी लेखनी उठाएँ तो इस भाषा की श्रीवृद्धि में चार चाँद लगता रहे। समसामयिक एवं स्वतन्त्र विषयों पर स्वाभिकल्पित,स्वाभ्यानुमेय व स्वानुभूत छोटे, बड़े सृजन मौलिकता का निदर्शन तो है ही, परन्तु श्रेण्य, वह भी आर्ष वाङ्मयोपजीव्याधृत, रचनाओं से किसी भी भाषा,विभाषा के मूल–मूर्धा पर्यन्त सर्वांगपोषक वह रसायन मिल जाता है जो उसे देश–काल जनित संक्रान्ति, जिससे मेरे मत में हमारी भोजपुरी भी गुजर रही है, में भी असंक्रमणीय,सुदृढ़,उर्जित,जीवंत एवं प्रवाहमान बनाए रखते हुए उसे सतत अनुप्राणित किये रहता है। यहाँ यह भी उल्लेख्य है कि कोई भी भाषा देश–कालजन्य कारकों,परिस्थितियों के सहित तत्–तदनुप्रेरित एवं प्रभावित बुधजनो, बुद्धिजीवियों, सर्जको, लेखकों, कवियों,आलोचकों आदि से अभिवर्धित बौद्धिक सम्पदा से कमोबेस सतत समृद्ध होती रहती है, जिसमें रचनाओं के प्रति पाठकों की रुचि,प्रतिक्रिया एवं उनका प्रचार–प्रसार आदि भी जैविक कारकों में शामिल हैं। जहाँ तक भोजपुरी में श्रेण्य एवं प्रचुर स्तरीय साहित्यिक रचनाएँ न होने की भान्ति का प्रश्न है, तो इस परिप्रेक्ष्य में मेरा मानना है कि श्रद्धेय भिखारी ठाकुर से पूर्ववर्ती एवं उनके सहित अब तक जिन सुधी लेखकों की समग्र साहित्यिकी भाव–व्यन्जनाभिवेष्टित एवं विद्वज्जनानुमोदित काव्य,गीत,नाटक,कहानी,उपन्यास,निबंध,संस्मरण,आलोचना,गद्य,पद्य,कहानीसंकलन,रिपोर्ताज आदि विधाओं पर जो रचनाएँ भोजपुरी के प्रगतित्रिपथगामिनी में समायी हैं, उनका सीमित प्रचार,प्रसार होने एवं सर्वसुलभता के अभाव के साथ साथ वर्तमान सोशलमिडिया से प्रभावित समय में पाठकों द्वारा भोजपुरी क्या हिन्दी,अंग्रेजी आदि भाषाओं के स्तरीय साहित्य तक को भी प्रायः हाथ तक नहीं लगाने के प्रवृत्ति के कारण सामान्यतः शायद यह धारणा विकसित हुई हो कि भोजपुरी भाषा में स्तरीय एवं श्रेण्य रचनाएँ पर्याप्त नहीं हैं। परन्तु यह धारणा कहीं से भी समीचीन एवं तथ्याधारित नहीं है,ऐसी मेरी प्रबल मान्यता है। शकुन्तला की रचना के समय ही इस प्रबंध की रचना में प्रवृत्त होने के बाद मुझे ऐसा लगा कि भोजपुरी के स्वरूप अभिव्यक्ति–वैविध्य, व्यापकत्व एवं लचीलापन के कारण इसमें सहित्य की सभी विधाओं में रचना के लिए पर्याप्त एवं अप्रतिम अभिव्यक्ति क्षमता,पटुता एवं सुगम्यता है और संविधान की आठवीं सूची में शामिल दुसरी क्षेत्रीय भाषाओं की तुलना में भोजपुरी का साहित्य–भण्डार अधिक विपुल,समृद्ध एवं व्यापक है। अबतक दो खण्डों में प्रकाशित विशाल भोजपुरी विश्वकोष इस तथ्य का प्रामाणिक निदर्शन है। इतना ही नहीं, पौराणिक मलद–करूष क्षेत्र की भाषा के गुणसूत्र से कालक्रमतः उद्भूत, संवर्धित, निरंतर अग्रसर एवं सातवीं–आठवीं शताब्दी से अपने उत्स की सभी दिशाओं में विस्तृत एवं परिवर्धित होकर इन्द्र,कश्यप–अदिति,वामन,अगस्त्य,विश्वामित्र,राम प्रभृति देवताओं,महर्षियों,महामानवों से लेकर अपने विस्तार के क्षेत्र में आधुनिक काल के पुरोधाओं, महापुरूषों से अंकुरित,प्रवर्धित सभ्यता–संस्कृति, मानवीय अस्तित्व की अस्मिता, ओज, सुसंकल्प, पुरूषार्थ, साहस, शौर्य, बलिदान, औदार्य,मिलनसारिता आदि सद्गुणों की महती गाथा की हस्ताक्षर एवं गवाह यह भोजपुरी भाषा देश–काल की परतों में उनके दबे साक्ष्यों, कलात्मकता, आख्यानों, कथाओं,सच्चाईयों,इतिवृत्तों,इतिहास आदि को अनावृत्त कर तत्तद् सृजनविधाओं को अपने साहित्यिक कलेवर में पिरोने की श्लाघ्य दिशा में निरंतर अग्रसर है। भाषा के विभिन्न आयामों की बात की जाय तो आज देश,विदेश में 150 मिलियन से अधिक लोगों द्वारा बोलीजानेवाली हमारी यह भोजपुरी भाषा यास्क,पाणिनि,कात्यायन,पतंजलि,ओडोल्फ डब्ल्यू श्लेगल,फ्रेडरिक वान श्लेगल,कोर्दोस्क,हेनरी थॉमस कॉलब्रुक,याकोब ग्रिम,फान्त्स बॉप,ग्रासमान,फ्रेडरिक मैक्समूलर, विलियम ड्वाइट ह्विटनी, ब्लूमफील्ड, जार्ज ए0 ग्रियर्सन,डा0सुनीति कुमार चटर्जी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, आचार्य बलदेव उपाध्याय, पण्डित वाचस्पति गैरोला, कामता प्रसाद गुरु, डा0पी0डी0गुणे, डा0मनमोहन गौतम,डा0कैलाशचन्द्र भाटिया, मोइनुद्दीन कादरी, डा0 हरदेव बाहरी, शिवनाथ,एम0ए0, डा0 श्यामसुन्दर दास, डा0मंगलदेव शास्त्री, डा0भोलानाथ तिवारी, डा0कपिलदेव द्विवेदी,डा0मोतीलाल गुप्त,डा0 बाबूराम सक्सेना, नलिनी मोहन सान्याल,आचार्य



www.bhojpurisahityangan.com

किशोरीदास बाजपेयी,डा0 उदय नारायण तिवारी,डा0 देवेन्द्र नाथ शर्मा, डा0 राम विलास शर्मा, जयकुमार जलज, डा0सरयू प्रसाद अग्रवाल,डा0 अम्बा प्रसाद सुमन,डा0देवी शंकर द्विवेदी आदि सहित संस्कृत साहित्य के समसामयिक विद्वान डा0उमाशंकर शर्मा'ऋषि' तथा डा0 चन्द्रकान्त शुक्ल 'भास्वर' इत्यादि प्रभृति भाषाविदों, भाषा–विज्ञानियों, भाषा–शास्त्रियों, साहित्येतिहासविदों व शोधार्थियों के द्वारा प्रस्तुत भाषायी एवं भाषा वैज्ञानिक तथ्यों की गवेषणाओं से अनुप्रेरित तथा अनुप्राणित होकर शास्त्रीय,श्रेण्य एवं समसामयिक सृजन अपने साहित्यिक तथा भाषानुशासनिक कलेवर में आत्मसात करती दिख रही है। इतना ही नहीं स्वमृदापुत्रों से स्वतः–निसर्गतः प्रभूत एवं सदियों से अपने पुत्रों से प्रवर्धित,मुकुलित,पुष्पित तथा संपोषित हमारी यह भाषा आर्ष मनीषियों द्वारा वेदों,उपनिषदों,गीतादि शास्त्रों में प्रस्तुत तथ्यों तथा सांख्य,न्याय,वैशेषिक,मीमांसा,वेदान्तादि दर्शन के निहितार्थों से अपने रचनायी आयाम को उपबृंहित करते हुए वाल्मीकि,व्यास,भास,कालिदास,भारवि,माघ,दण्डी,बाण प्रभृति शब्द–अर्थ–अलंकार–भाव आदि के शिल्पियों एवं सर्जकों के सृजन को उपजीव्य बनाकर साहित्य–सर्जना के मस्तकमूर्धा को स्पर्श करती दिख रही है। भारतीय भाषाओं की विकास यात्रा में यह तथ्य निर्विवादरूप से सत्य, अतएव ग्राह्य है कि जिस भाषा में शास्त्रीय और श्रेण्य विषयों पर जितनी अधिक रचनाएँ हुई हैं उनसे उनके वर्ण्य विषयों के इन्द्रधनुषी वैविध्यागम के साथ साथ उन उन रचनाओं से प्राप्त तत्समादि शब्दों के सहित तद्भव,विदेशी एवं पड़ोसी भाषाओं के जनसाधारण द्वारा व्यवहृत शब्दों के अपरिहार्य समावेश के कारण उस भाषा की श्रीवृद्धि से उसका भाषायी आयाम उतना ही व्यापक होता गया है। उत्तर भारतीय भाषाओं में व्रजभाषा,अवधी,पंजाबी,भोजपुरी,बांग्ला,मैथिली,असमिया,मराठी,गुजराती तथा पंजाबी आदि इस तथ्य के कुछ उदाहरण हैं। अब यदि हम अपनी इस भाषा के श्रमसाध्य प्राचीन एवं अब तक सुलभ मध्यकालीन भाषायी अतीत पर दृटिपात करेंगे तो इस संबंध में यह उल्लेख्य है कि बोलचाल की व्यापकता एवं साहित्यिक सामग्री के प्रचुर सृजनसामर्थ्य के बावजूद इस भाषा को, मध्यकाल आते आते इसके समग्र क्षेत्र की अपेक्षाकृत अधिक राजनैतिक–आर्थिक संवेदनशीलता एवं उससे उत्पन्न अस्थिरता,तत्कालीन शासकों,सामन्तों आदि की अपनी प्रजा की भाषा,कला तथा संस्कृति आदि सामाजिक सरोकार के मुद्दों के प्रति सम्भवतः उदासीनता आदि के कारण, अन्य क्षेत्रीय भाषाओं की तरह भोजपुरी को राज्याश्रय नहीं रहा। यद्यपि हर्षकाल के बाद मध्यकाल तक उत्तर भारतीय लगभग सभी क्षेत्र राजनैतिक उलटफेर,सतत संग्राम एवं विभिन्न प्रकार के सामाजिक,आर्थिक संक्रमण से कमोबेस प्रभावित रहे, परन्तु भोजपुरी भाषी क्षेत्रों में उनकी तीव्रता अधिक रही। ऐसी स्थिति में सृजनसामर्थ्य तथा बोलचाल, भावविनिमय सामर्थ्य आदि भाषायी तत्वों के लचीलापन एवं व्यापकता के बावजूद राज्याश्रयरहितता आदि विभिन्न कारणों से भोजपुरी में शास्त्रीय एवं श्रेण्य विषयों पर अपेक्षानुरूप और रचनाएँ हिन्दी के अभ्युदय एवं आधुनिक काल से पूर्व वास्तव में यदि कुछ कम हैं, तो ऐसा होना स्वाभाविक है। यह वही समय था जब भोजपुरी अपने नाभि–हृदय क्षेत्र में प्रस्फुटित विद्वतांकुर को भाषोपजीव्यता सहित सामाजिक,सांस्कृतिक वैविध्य से परिपूर्ण पोषक रसायन देकर हिन्दी को तरुवर बनाने में अपनी भाषायी उर्जा को सहर्ष स्थानांतरित कर रही थी। भोजपुरी क्षेत्र के ही अधिकांश विद्वान अपनी मातृभाषा का बलिदान देकर हिन्दी के आधुनिक स्वरुप को गढ़ने, बलान्वित करने के लिए भाषायी पंचप्राण को संचारित करते रहे। अस्तु! यह मानकर कि जो हुआ उसे तो होना ही था, इसलिए अब इस बात की आवश्यकता है कि भारतीय संस्कृति एवं अधिकांश भारतीय भाषाओं की जननी संस्कृत के आध्यात्मिक तथा शास्त्रीय काव्य विधाओं सहित समसामयिक अन्य विषयों का अधिकाधिक आलम्बन लेकर स्वकल्पनोद्भूत कथ्य,तथ्य,भावादि की अभिव्यक्ति द्वारा इस भाषा में अधिक से अधिक सृजन साहित्य की सभी विधाओं में हो। भोजपुरी में ऐसे सृजन से हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं को भी स्वान्यान्यज उपजीव्यतारुपी उर्जा मिलती रहेगी। मेरा यह भी मानना है कि संस्कृतरुपी आर्षभारती के साथ साथ दुसरी भारतीय भाषाओं के साहित्य–विधा–विषयजन्य सृजन वैविध्य के सन्निकर्ष से भोजपुरी के साहित्यिक आयाम,विषयविपुलता आदि में क्षैतिज एवं उर्ध्वगामी प्रवाह के साथ साथ इसमें समय के अनुरुप तत्सम,तद्भव,देशज एवं विदेशज आदि शब्दों के ग्राह्य प्रचलन से इसकी भाषायी व साहित्यिक श्रीवृद्धि उत्तररोत्तर होती रहेगी। प्राचीन समय में दक्षिण भारतीय भाषाओं में भारतीय संस्कृति के उत्स एवं धूरी वैदिक संस्कृत वाङ्मय एवं लौकिक संस्कृत साहित्य को बड़ी उदारता एवं उत्साह से अपने साहित्य में स्वीकार किया गया। इससे इन भाषाओं की श्रीवृद्धि होने के साथ साथ



www.bhojpurisahityangan.com

उनके वर्ण्य विषयों के वैविध्य तथा भाषायी आयाम में भी उत्तरोत्तर वृद्धि होती रही। इन भाषाओ में आज अच्छी मात्रा में संस्कृत साहित्य के भावानुवृत्त एवं संस्कृत शब्द आत्मसात मिलते हैं।

दुसरी तरफ अब यदि हम इस भाषा के भाषा–वैज्ञानिक गवेषणा के पहलू के तहत द्राविडी भाषाओं को छोड़कर भारत की लगभग सभी भाषाओं की जननी पाणिनि अनुशासित संस्कृत क्या, आधुनिक अधिकांश भारतीय भाषाओ में लगभग मानकीकृत व्याकरणिक अनुशासन के समान भोजपुरी के सर्वसम्मत व्याकरणिक मानकीकरण पर विचार करना चाहें तो इस सन्दर्भ में मुझे यूरोपीय भाषाविद विल्हेम वॉन हम्बोल्ट (1767-1835) के भाषा सम्बंधी विचार कुछ हद तक समीचीन एवं युक्तिसंगत लगते हैं। ये भाषा को एक स्थिर परिभाषा में बांधने के पक्ष में नहीं दिखते हैं। हम्बोल्ट महोदय चीनी भाषा,जिसमें व्याकरण के रूप नहीं हैं,को अलग वर्ग में रखते हैं। भाषा के श्लिष्ट,अश्लिष्ट तथा प्रश्लिष्ट नामक इन तीन वर्गों में से कोई एक भाषा निश्चित रूप से एक वर्ग में नहीं रखी जा सकती। सभी भाषाओं में नये वर्गों के कुछ न कुछ लक्षण मिल सकते हैं। ये शब्दों को संस्कृत की तरह धातु पर आधृत होने का विचार रखते हैं और प्रत्ययों को कभी न कभी स्वतन्त्र शब्द रहने का मत व्यक्त किये हैं। अब यदि हम भोजपुरी भाषा एवं इसके शब्दानुशासन पर जाते हैं तो यह सर्वस्वीकृत तथ्य है कि अपने भाषायी विस्तार के आंचलिक–जनपदीय आदि क्षेत्रीय आयाम में यह भाषा अर्धमागधी से निकली अन्य क्षेत्रीय भाषाओं की तुलना में अधिक जीवंत, उन्मुक्त और वैविध्यपूर्ण है। फिर भी कई विद्वानों ने भाषोन्नयनादि के साध्वाशय से प्रेरित होकर भोजपुरी का शब्दानुशासन–व्याकरण देने का प्रयास किया है। उपलब्ध जानकारी के अनुसार भोजपुरी के अब तक एक दर्जन से अधिक स्तरीय व्याकरण,शब्दानुशासन के ग्रन्थ प्रकाशित हैं। इनके अतिरिक्त कई विद्वान सोत्साहित भाषाविज्ञान के मान्य वैज्ञानिक तत्वों को, जनपदीय–आंचलिक–क्षेत्रीय शोध–गवेषणादि में प्राप्त भाषायी वैविध्यों के आलोक में, आत्मसात कर आपेक्षिक रुप से और अधिक परिष्कृत एवं सर्वस्वीकार्य व्याकरण,शब्दकोष,शब्दानुशासन आदि भाषायी क्षितिज पर प्रकाशित करने के प्रयास में प्रवृत्त भी हैं। पर इस सन्दर्भ में भाषा वैज्ञानिक तथ्य यह भी है कि केवल व्याकरण–शब्दानुशासन की व्यापकता एवं विपुलत्व ही किसी भाषा के अस्तित्वमान,जीवंत,ग्राहय,प्रशंसनीय,महनीय तथा लोकशासन व्यवस्था,संविधान से स्वीकार्य होने की एकमात्र भाषावैज्ञानिक कसौटी नहीं है। उल्लेख्य है कि स्वमृदापुत्राभिनिःसृतत्व, नैसर्गिक उत्स,अकृत्रिमता,जनसामान्य में प्रायोगिक वैविध्य,नवान्वेषी जिजीविषा आदि भाषायी जीवंतता भाषा के मुख्य प्राणतत्व होते हैं, जिनसे भोजपुरी संविधान की अनुसूची में शामिल अपनी अन्य क्षेत्रीय सहचरियों की तुलना में अधिक अनुप्राणित एवं स्पन्दित है। फिर भी प्रायः यह सर्वानुभूत तथ्य है कि अत्यन्त वैज्ञानिक व्याकरणिक निकष पर मंजुल, सतत प्रवाह,नवान्वेषी जिजीविषा और स्वमृदासुन्वाभिनिःसृत शब्दों के प्रयोग–त्वरित वैविध्यागम की लोक ताशीर से लबरेज भोजपुरी में कालक्रमतः उपलब्ध व्याकरणों से भाषाशास्त्र व भाषावैज्ञानिक मानकों पर और अधिक परिष्कृत व व्यापक शब्दानुशासन–व्याकरण वर्तमान में गणमान्य भाषाविदों एवं साहित्यकारों की सर्वसम्मति से यदि मूर्तिमान होता है तो वह भोजपुरी के भाषायी तत्वों को और अधिक सुदृढ़कर इसके भाव्य साहित्य को व्याकरणिक एकरुपतारुपी धागे में पिरोने में बहुत हद तक उपादेय होगा। लेकिन यह भी विचारणीय है कि इस भाषा की विस्तृत भौगोलिक,सांसकृतिक विस्तार से उत्पन्न स्थानीय व क्षेत्रीय वैविध्य आदि नैसर्गिक कारणों से मुनित्रय–पणिनि,कात्यायन तथा पतंजलि से व्याकृत, अनुशासित, सुसम्पोषित एवं सुसम्वर्धित लौकिक संस्कृत के समान उन उन व्याकृत नियमों,बंधनों के द्वारा इसके क्षैतिजोर्ध्व भाषिक विकासोन्मुख आयाम में सद्यः एवं दीर्धकलिक कितना भाषिक अनुशासन ला सकेंगे।कहने को तो त्रुट्यानुशयी,छिद्रान्वेषी एवं फेनानुदर्शी स्वभँवरांकिनी,अल्हड़प्रकृति मस्त सरिता की तरह सततप्रवाहमती भोजपुरी भाषा की इस प्रकृति को, रूप–यौवन–लावण्याभिमत्ता मदिरेक्षिणी प्रभृति अनियाम्या के समान, इसकी कमियों में शुमार करेंगे या करते भी होंगे,परन्तु भाषा–विभाषा के अन्तःस्थल–तहावलोकी प्रायः सभी प्राचीन एवं अर्वाचीन भाषाविद, भाषागतिशीलता के जानकार एवं अध्येता–शोधकर्ता भाषा के इस तथ्य पर लगभग एकमत दिखते हैं कि भाषा की स्वाभाविक गतिशीलता एवं भाषिक विकासोन्मुख जिजीविषा ही उसके प्राण–तत्व हैं, उसकी जीवंतता है और व्याकरण भाषा के प्रवाह–जीवन में किञ्चित् ठहराव तो लाता ही है, किम्वा एक हद तक उसे जकड़ भी लेता है। पर अपनी अन्तःप्रकृति एवं स्वतःस्फूर्तता आदि नैसर्गिकताओं तथा अपनी अदम्यप्रवाहमती त्वरा के कारण इससे इतर यह भी हो सकता है कि वैयाकरणों द्वारा कमोबेस पाणिनीय संस्कृत की तरह स्वर्णिम नकबेसर लगाने के प्रयास के



www.bhojpurisahityangan.com

बावजूद अपने जमीन की जड़ों से ईशा की लगभग सातवीं–आठवीं शताब्दी से उद्भूत,प्ररोहित,मुकुलित,सुरभित,सतत पोषित–पल्लवित एवं मधुर रसाभिपक्व रसाल की माधुरी से ओत प्रोत भोजपुरी जैसी भाषा अपने लिए व्याकृत अनुबंधों,उपबंधों से उत्पन्न अथवा सम्भाव्य भाषायी जड़ता,ठहराव एवं अल्पप्राणतादि को अपने नैसर्गिक भाषायी जीवंतता से निष्प्रभावी कर समयपथ पर अपने भाषिक क्षैतिजोर्ध्व आयाम का अनिन्दित विस्तार करती भी रहे। इस प्रसंग में यहाँ उल्लेख्य है कि लगभग वैदिक काल से यास्क (लगभग800ई0पू0) तक संस्कृत भाषा, जिसे वैदिक साहित्य में कहीं अन्वध्याय या छान्दस् ,कहीं आर्य या आर्यभाषा, नैगम या केवल भाषा की अभिधा प्राप्त थी और जो पाणिनि के अष्टाध्यायी तक में यास्क के समान 'भाषा' ही कही गयी, तत्कालीन व्याकरण के पाणिनि सदृश कठोर अनुशासन से प्रायः मुक्त रही। वैसे पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में अपने पूर्व के आपिशलि,काश्यप,गालव,गार्ग्य,चाक्रवर्मण,भारद्वाज,शाकटायन,शाकल्य,सेनक एवं स्फोटायन आदि जैसे वैयाकरणों के नाम का उल्लेख करने के साथ ही यह स्पष्ट किया है वे संस्कृत भाषा को स्वानुभूत,स्वकल्पित व स्वविन्यस्त सूत्रों–नियमों के बंधन में नहीं बांध रहे हैं, अपितु उस समय शिष्टजनों द्वारा प्रयुक्त वाग्व्यवहार का अन्वाख्यान–निरीक्षण एवं विश्लेषण कर उसे अवांक्षित दिशानुगामी होने से रोकने के लिए प्रयास कर रहे हैं। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि पाणिनि पूर्व की संस्कृत भाषा व्याकरण के अनुशासन से एकदम मुक्त तो नहीं थी, परन्तु वह प्रवाहमान थी,जीवंत थी,पाणिनि सदृश सन्धि,समास,कारक,उपसर्ग,प्रत्यय आदि अनतिक्रम्य कठोर अनुशासन से लगभग मुक्त तो थी ही,कठिन शब्द–अलंकार की कृत्रिमतारुपी बेड़ी से तो बिल्कुल ही आजाद थी। स्वयं पाणिनि के अष्टाध्यायी के सूत्र 'भूतेऽपि दृश्यन्ते–3.2.2 के निहितार्थ, कि उणादि प्रत्यय सामान्यतया वर्तमानकाल के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं, परन्तु कभी कभी ये भूतकाल के अर्थ में भी देखे जाते हैं, संस्कृत को जीवंत एवं लोकवाग्व्यवहार में होने के संकेत देते हैं। वैसे विद्वानों का एक वर्ग यह मानता है कि है कि संस्कृत भाषा संस्कृतज्ञों,विद्वानों,सुसंस्कृत द्विजों एवं शिष्ट–अभिजात्यवर्ग की भाषा तो थी ही, अपने विस्तार के क्षेत्र में बहुत समय तक आम लोगों की भी भाषा थी। उत्तर वैदिक काल में रचित–संकलित अधिकांश उपनिषदों की भाषा से इन तथ्यों को बल मिलता है। मुनित्रय के बाद संस्कृत को बोलचाल की भाषा होने के विमर्श–वैविध्य के अवलोकन–अनुशीलन से ज्ञात होता है कि भाषाविदों का एक वर्ग यह मानता है कि वैयाकरण पाणिनि, 500 ई0पू0, ने उपनिषद् काल तक संस्कृत मे वैदिक एवं लौकिक प्रयोग के संक्रमण एवं उस पर प्राकृत के प्रभाव से दृष्टिगोचर प्रवाहोन्मुक्तता को अनुशासित करने के उद्देश्य से अष्टाध्यायी के रूप में सर्वतोभावेन वैज्ञानिक एवं पश्चिम में आधुनिक भाषा–विज्ञान के प्रादुर्भाव से हजारों वर्ष पूर्व भाषाविज्ञान के सभी पहलूओं पर एक ऐसे अद्वितीय व्याकरण का अवदान दिया जिसके बाद संस्कृत कालक्रम में भर्त्सित भाषायी संक्रमण से बचकर अनपेक्षित दिशानुगामी नही होने पायी एवं उसकी पहचान सुस्थिर रही। लेकिन दुसरी तरफ कई प्राचीन भाषाविद एवं विद्वान यह मानते हैं कि पाणिनिकृत अष्टाध्यायी के व्याकरणिक कठोर नियमों में जकड़े रहने से संस्कृत वाग्व्यवहार से धीरे धीरे दूर होने लगी और तब उससे उत्पन्न शून्य में उत्तर वैदिककाल के उत्तरार्ध से ही जैन,बौद्ध धर्मावलम्बियों से मिले प्रोत्साहन से जन जन में अंकुरित प्राकृत,पाली,अपभ्रंस आदि को पल्लवित तथा समृद्ध होने देने के दोषारोपण से नहीं बच सकी। हाँ, मुनित्रयानुशासित संस्कृत पहले की तरह ही शिक्षित, साहित्यिक एवं शिष्ट–अभिजात्य वर्ग की भाषा बनी रही एवं इसमें उत्साह के साथ गुणवत्ता एवं वैविध्यपूर्ण साहित्यिक रचनाएँ कठोर पाणिनीय नियमों के प्रति अपार श्रद्धा से उत्तरोत्तर होती भी रही। यहाँ तक कि पाणिन्योत्तर बौद्ध और जैन विद्वान भी आर्ष–ब्राह्मण धर्मपोषित विद्वानों के समानान्तर अथवा किञ्चित् उनसे बढ़कर सम्राट अशोक–सुंग–हर्षकालावधि से प्राक्–मध्यकाल–मध्यकाल तक संस्कृत में बड़े उत्साह से अपने अपने साहित्यिक–धार्मिक–दार्शनिक व न्यायादि ग्रन्थों की रचना करते रहे। परन्तु तब भी पाणिन्यानुशासन से इस अवधि में संस्कृत धीरे धीरे आम लोगों से दूर तो होती ही रही। और तब लोकजिह्वाभिरुचि,प्रयत्नलाधव,ध्वनि–अर्थ पर बल,भावातिरेक,अनुकरणीय अपूर्णता, सादृश्य या मिथ्या सादृश्य, वैयक्तिक–शारीरिक विभिन्नता, प्रबुद्ध वक्ता, लेखकादि द्वारा जानबूझकर की गयी शाब्दिक विरुपता,जातीय मनोवृत्ति जैसे आभ्यंतरिक कारण एवं भौतिक वातावरण,भूगोलीय विभिन्नता,सांस्कृतिक मेलजोल,सामाजिक व्यवस्था,सामाजिक वातावरण,विशिष्ट वाचिक समूहों की उन्नति,राज्यसत्ता–राजनीतिजन्य ऐतिहासिक प्रभाव, विशिष्ट व्यक्तियों के शब्द–प्रयोग,जाति विशेष का प्रभाव, साहित्यिक प्रभाव, समयाभिजन्य प्रभाव तथा आधार सिद्धान्त आदि



www.bhojpurisahityangan.com

कारणों से प्राकृत,पाली,अपभ्रंश,मागधी,अर्धमागधी आदि कठोर भाषानुशासन से लगभग मुक्त भाषा–विभाषाएँ लोगो के व्यवहार में कालक्रमतः स्वतःस्फूर्त रुप से आयीं। दुसरी तरफ शब्दानुशासन के पक्ष में यह तथ्य भी सर्वमान्य है कि किसी भाषा का व्याकरण उस भाषा की रीढ़ की तरह होता है जिससे वह अपने पैरों पर खड़ी दिखती है,उसकी पहचान सुस्थिर होती है और कई प्रकार के अवांछित दुष्प्रभावों से बचकर अपने साहित्य को अनुप्राणित करती रहती है। रचनाकार सापेक्ष भाषा शैली की विविधता, काव्य विशेषकर गद्यकाव्य में ध्वनि,रीति,वक्रोक्ति,अलंकार आदि काव्यशास्त्रीय प्रस्थान एवं अभिव्यन्जना आदि का वैशिष्ट्य तो किसी भी भाषा–साहित्य के लिए वांक्षनीय एवं सराहनीय है, परन्तु रचयिता सापेक्ष व्याकरणिक वैविध्य,वर्तनी के अन्तर्गत तत्सम,तद्भव,विदेशी शब्दों के प्रयोग संबंधी अनुशासन का अभाव या उनका मनमाना प्रयोग, सामासिक शब्दों के प्रयोग–पद्धति का मानकीकृत न होना अथवा होने पर भी अनुपालन का अभाव, अनुस्वार,चन्द्रबिन्दु तथा परसवर्ण के साथ साथ विभक्ति–चिन्ह,संयुक्त क्रियाओं के लेखन आदि में एकरुपता का अभाव आदि कुछ ऐसे भाषायी अनियमितता एवं अपगति के बिन्दु हैं जो समग्र या आंशिक रुप में भी वस्तुतः भाषायी उच्छृंखलता है एवं इस रुप में सामान्यतः भाषायी अपरिपक्वता,विद्रूपता आदि के संसूचक भी। और भाषायी प्रवाह,भाषायी जीवंतता, क्षेत्रीय भाषिक–वैविध्य आदि के नाम पर ऐसा होना अध्यातव्य,उपेक्षणीय एवं परिहार्य कदापि नहीं माना जा सकता। अंचल,जनपद,इलाका आदि क्षेत्रीय जनसमुदाय में किसी खास वस्तु–क्रियापरक शब्दप्रयोग–वैविध्य,मुहावरादि का प्रचलन, क्षेत्र विशिष्ट बलाधातजन्य ध्वनिप्रसूत शब्दों आदि का, वह भी विशेषतः वाग्व्यवहारिक, प्रयोग तो भाषा का अलंकरण होता है। लेकिन साहित्यादि रचनाओं में भाषा–गठन के नैसर्गिक मूल तत्वों,आधारादि के सामान्य वैशिष्ट्यों से अनभिज्ञता या जानबूझकर व्यक्तिपरक वर्तन्यादि का मनमाना प्रयोग, भाषा के लिए अकादमिक मानकीकरण का अभाव या रचनाकारों में भाषावैज्ञानिक सामान्य तत्वों यथा वाक्यविज्ञान,रुपविज्ञान,अर्थविज्ञान,ध्वनिविज्ञान,शब्दविज्ञान तथा प्रकरणविज्ञान आदि से अनभिज्ञता तत् तद् भाषा–सुस्वास्थ्य के लिए उचित नहीं होता है। किसी भी भाषा में रचयिता सापेक्ष स्वछन्द प्रयोगाभिरुचि,स्वाहंकारानुबोधक लेखनादि सहित अज्ञों की भव्य शीर्षकाडम्बरयुक्त कट–पेस्टाभिग्रस्त तथ्यहीन रचनाधर्मिता, सामान्य भाषानुशासन रहितता एवं गहन पठन–पाठन,स्वाध्यायादि रुपी वाङ्मयी तपोपार्जित पूण्य रहित रातों रात जबरन प्राप्त खोखली विद्वताधर्मितादि विकृतिप्रसूत रचनाओं का, उनके रचनाकारों से किसी न किसी रुप में प्रभावित होकर, मान्य भाषायी आलोचकों,भाषायी मंचों,पत्रों,पत्रिकाओं आदि द्वारा उल्लेख मात्र भी न तो उस भाषा के लिए स्वस्थ व विद्वज्जन प्रशस्त होता है और न ही उस भाषा–साहित्य की समृद्धि,प्रगल्भता,सातत्य एवं उत्कर्षादि लिए वांक्षनीय हो सकता है। भाषा–साहित्य के प्रति समाज की संवेदनशीलता को हल्के में नहीं लिया जाना चाहिए। केवल स्वहित लक्ष्यसाधनादि हेतु प्रभूत वर्गों, भाषायी मंचों,पत्र–पत्रिकाओं एवं उनके संपादकों द्वारा विद्वानों से भाषाविज्ञान के आलोक में सुझाये गये वर्तन्यादि प्रयोग से इतर लेखनादि का भाषा–साहित्येतिहास के मान्य आलोचकों,विद्वानों द्वारा भी अनुमोदन–गुणगान तथा उससे उत्पन्न भाषा–साहित्यिक विपथन संबंधित भाषा को सामान्यतः बहुत दिनों तक भाषिक रीढ़विहीनता,अपरिपक्वता आदि लांक्षआनों के दंश को झेलने के लिए अभिशप्त कर देता है। तब संबंधित एवं अन्य भाषा–भाषी समाज एवं उनके पुरोधा उक्त बहुविरुपता,अपरिपक्वतादि भाषायी विपथन से बोझिल समसामयिक भाषा–साहित्य को गम्भीरता से नहीं लेते हैं। और तब उस भाषा के लिए वांक्षित लक्ष्यादि को संबंधित भाषायी अकादमी एवं शासन,सरकार से प्राप्त करना आसान नहीं रह जाता। हाँ परिवर्तन सृष्टि का शाश्वत नियम है एवं कोई भी भाषा परिवर्तन से अछूती नहीं रह सकती। परन्तु ये परिवर्तन अज्ञानज भाषायी विपथन एवं विकृति से परे स्वतःस्फूर्त,व्यष्टिनिरपेक्ष होते हैं एवं दीर्घकालावधि में अनुभूत व दृष्ट होते हैं। वस्तुतः भाषायी ध्वनि परिवर्तन,शब्द–समूह परिवर्तन,रुपरचना परिवर्तन,वाक्य रचना परिवर्तन तथा अर्थ परिवर्तन समाज की सतत गतिशीलता के साथ ही सूक्ष्मरुप से जारी रहते हैं। अतएवं जहाँ भाषायी प्रवाह–परिवर्तन,उसकी जीवंतता,उसमें लोकप्रचलित शब्दादि प्रयोगाभिपुष्ट वैविध्यागमादि भाषायी उन्नयन के संकेतक हैं, वहीं भाषावैज्ञानिक तत्वों एवं भाषानुशासन के सामान्य मानकों की उपेक्षा, जाने अनजाने में उनका स्वरुच्यानुगत विपथन,विरुपता आदि अवांक्षनीय एवं त्याज्य है।

उपर्युक्त भाषायी शब्दानुशासन के पक्ष–विपक्ष संबंधी अब तक समीक्षित एवं आगे अनुसंधितव्य विमर्श के क्रम में भाषाविदों ,भाषावैज्ञानिकों एवं विद्वानों से सहमत होते हुए हम इतना तो कह ही सकते हैं कि किसी भी



www.bhojpurisahityangan.com

भाषा के लिए सर्वस्वीकृत,सर्वमान्य,सर्वस्तुत्य शब्दानुशासन–व्याकरणरूपी स्थिरांक से उसमें अवांक्षित साहित्योद्रेकजन्य बाढ़ प्रभृति प्रगति एवं अतिरेक किन्हीं किन्हीं पहलुओं में यद्यपि कुछ मन्थर एवं बांधानुबद्धवत् होकर कुछ स्थिर होता हुआ तो प्रतीत होता है, किन्तु कुल मिलाकर शब्दानुशासन–व्याकरणरूपी स्थिरांक के सापेक्ष संबंधित भाषा–साहित्य, सद्यः एवं कालक्रमतः, सम्भावित भाषायी दुष्प्रभावों से असंक्रमणीय रहकर अक्षुण्ण तथा विद्वज्जनप्रशस्त दिशानुगामी तो बना रहता ही है।

भाषा–साहित्य के विकास में शब्दानुशासन के प्रभावादि के सम्यक् विमर्श के प्राचीन ऐतिहासिक तह में जाने के लिए प्राक्पाणिनि एवं पाणिन्योत्तर संस्कृत व्याकरण के प्रभाव को जानना अपेक्षित प्रतीत होता है। ध्यातव्य है कि आदिकवि वाल्मीकि के रामायण एवं व्यासप्रणीत भागवत–पुराण की रचनाओं में आर्षास्था सहित भाषाविदों के एक वर्ग से दृष्टिगत प्राक्पाणिनि संस्कृत प्रयोग की साहित्येतिहासिक प्रस्थापनाओं को एक सीमा तक स्वीकृत मानने एवं तब उनपर पाणिनीय प्रभाव की न्यूनता के तथ्यों को मान लेने के बाद भी इन रचनाओं को तत्समय प्रचलित शब्दानुशासन से पूर्णतः मुक्त नहीं माना जा सकता है। दुसरी तरफ पाणिनि की तत्समय भाषा को उनकी अष्टाध्यायी से अनुशासित–संस्कृत होने पर तो संस्कृत में उच्चस्तरीय एवं श्रेण्य साहित्य,न्याय,मीमांसा,वेदान्तादि सहित भेषजीयादि रचनाओं,टीकाओं आदि का अतुल प्रभव, उनकी त्वरा एवं उत्कर्ष आदि भाषानुशासनजनित प्रवाह–प्रवृद्धि संबंधी अपेक्षित नकारात्मक आकलन को झूठलाता ही नजर आता है। इस संबंध में यह तथ्यानुपोषित है कि वाल्मीकि,व्यासादि द्वारा प्रयुक्त संस्कृत के प्रवाहक्रम में पाणिनिव्याकृत विशुद्ध लौकिक संस्कृत में कालक्रमतः परवर्ती भास, कालिदास, भारवि, माघ, दण्डी, श्रीहर्ष, बाण, अमरचंद्र सूरि, मातृचेट, आर्यसूर, आदि तथा अन्य कवियों–काव्य शास्त्रियों में मातृगुप्त, भर्तृमेण्ठ, रत्नाकर, शिवस्वामी, क्षेमेन्द्र, मंखक, आचार्य नन्दिकेश्वर, महामुनि भरत, मेघाविन्, भट्टि, भामह, उद्भट्ट, वामन, रुद्रट, मम्मट,आनन्दवर्धन, राजशेखर, धनंजय, अभिनवगुप्त, कुन्तक, महिम भट्ट, आचार्य विश्वनाथ आदि प्रभृति संस्कृत के विद्वानों,साहित्यकारों एवं काव्यशास्त्रियों की विद्वज्जन प्रशस्त विपुल रचनाएँ आयीं। इनके अतिरिक्त संस्कृतानुरागी बौद्ध विद्वानों में अग्रगण्य एवं बुद्धचरित,सौन्दरानन्द आदि संस्कृत महाकाव्यों के प्रणेता अश्वघोष(प्रथम सदी ई0), बौद्धधर्म के महायान सम्प्रदाय की सैद्धान्तिक प्रतिष्ठा करने वाले आचार्य एवं शून्यवाद के महान दार्शनिक ग्रन्थ प्रज्ञापारमितासूत्र या माध्यमिककारिका के प्रणेता नागार्जुन (200ई0), चन्द्रकीर्ति (600ई0), महायान बौद्ध सम्प्रदाय के योगाचार या विज्ञानवाद मत के महान प्रभावशाली आचार्य असंग (400ई0) तथा उनके सहोदर भ्राता वसुबंधु, स्थिरमति (500ई0), स्वतन्त्रविज्ञानवादी दिङ्नाग(500ई0),धर्मपाल(700ई0),धर्मकीति(700ई0),शांतरक्षित एवं कमलशील (800ई0) आदि बौद्ध नैयायिक–दार्शनिकों की भी पाणिन्यानुशासित संस्कृत में विपुल,मंजुल एवं विद्वतापूर्ण रचनाएँ आयीं। जैन धर्म के रचनाकारों में समन्तभद्र(द्वितीय सदी),हरिवंश के रचयिता जिनसेन(ई0नवम शती), जैन महाकाव्य वरांगचरित के रचयिता जटासिंहनन्दी या जटिल (सप्तम शती), मल्लिषेण(ग्यारहवीं शती),चन्द्रप्रभ–चरित के रचनाकार वीरनन्दी(दशम शती),पार्श्वनाथ–चरित के रचयिता वादिराज(पूर्व ग्यारहवीं शती) आदि से लेकर कमोबेस मध्यकाल तक प्रायः सभी विधाओं की प्रचुर स्तरीय पद्य–गद्यादि साहित्य सहित न्याय–दार्शनिक,भेषज तथा अन्य शास्त्रीय रचनाएँ पाणिनिव्याकृत संस्कृत में होती रही। यद्यपि पाणिनि व्याकरण के कथित दुरूह सूत्रों–नियमों के पालन में लोकारुचिजन्य भाषायी प्रवाह–परिवर्तन एवं काल–नृस्वभावादि अपरिहार्य कारणों से संस्कृत अब भले वाग्व्यवहार में, मृतपाय तो नहीं, दुर्बल हिरण्यमयी रेखा सी दिखती है एवं अपेक्षित भाषिकविकास से वंचित होकर कृत्रिम भाषा होने के दंश को झेलती प्रतीत हो रही है,परन्तु विश्व की भाषाओं के व्याकरणों से दूर दूर तक अनतिक्रम्य क्या, समता से भी परे, अत्यंत वैज्ञानिक व्याकरण से व्याकृता पाणिनीय संस्कृत भाषा एवं इसका साहित्य अपने आप में सम्पूर्ण विश्वकोष है और यह विश्व के साहित्यप्रेमियों की अपार श्रद्धा एवं तत्तद् भाषायी रचनोपजीव्यता आदि की स्रोत आज भी बनी हुई है। यह भी ध्यातव्य है कि विश्व एवं यूरोप के देशों विशेषतः जर्मनी,फ्रांस,ब्रिटेन आदि में वैदिक साहित्य–व्याकरण–आरण्यक–उपनिषद् सहित पाणिनिकृत संस्कृत व्याकरण–अष्टाध्यायी,कात्यायनकृत वार्तिक, पतंजलिकृत महाभाष्य, काशिका वृत्ति,कौमुदी तथा वाक्यपदीय एवं पाणिन्योत्तर लौकिक संस्कृत के सम्पूर्ण साहित्य का मध्यकाल में उद्भूत,प्ररोहित, पल्लवित, मुकुलित एवं पुष्पित अध्ययन–अध्यापन,शोध आदि के कार्य एवं उनका प्रकाशन, कुछ मंथर गति से ही सही, आज भी बड़ी श्रद्धा एवं उत्साह के साथ भारत सहित विश्वस्तर पर जारी हैं। वर्तमान समय में प्राचीन राजनैतिक–आर्थिक–भाषायी गौरव के प्रति पुनर्जागृत लोक–राजनैतिक चेतना



www.bhojpurisahityangan.com

से संस्कृत का व्यापक प्रचार–प्रसार के साथ अपने प्राचीन गौरव को स्थापित करने की ओर अग्रसर दिखना भारतीय भाषा–संस्कृति के प्रेमियों सहित पूरे राष्ट्र के लिए सुखद अनुभूति का विषय है।

पुनश्च! भाषायी बृहत्तर विमर्श के तहत संस्कृत की उपादेयता–गौरव के सन्दर्भ में मध्यकालीन तथ्यों में यह भी उल्लेख्य है कि फ्रंसीसी पादरी कोर्दोस्क ने 1767 में सम्भवतः सर्वप्रथम संस्कृत की ओर यूरोपवासियों का ध्यान आकृष्ट किया। इसके बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनी शासन में कलकत्ता के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश विलियम जोन्स(1746-1794) ने 2 फरवरी 1786 ई0 को कलकत्ता स्थित एसिएटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल में शब्द,धातु तथा व्याकरण की दृष्टि से संस्कृत,ग्रीक,लैटिन,गॉथिक,केल्टिक एवं पुरानी फारसी में आश्चर्यजनक शाब्दिक–समासिक प्रयोग साम्य एवं इन सभी भाषाओं में संस्कृत की परिष्कृतता तथा श्रेष्ठता की तरफ यूरोपीय विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया। तत्पश्चात् हेनरी थॉमस कोलब्रुक(1765-1837), जर्मन विद्वान फ्रेडरिक वॉन श्लेगल (1772-1829),रैज्मस क्रिश्चियन रैस्क (1787-1832),याकोब ग्रिम(1785-1863)फान्त्स बॉप (1791-1867),विल्सन (1784-1860), रुडॉल्फ रॉथ (1821-1895),ग्रासमान(1809-1877),ओंगस्ट श्लाइखर(1821-1868),गेओर्ग कुर्टियस (1820--1885),मैक्समूलर (1823-1900) आदि प्राच्यविद्याप्रेमी पाश्चात्य विद्वानों ने संस्कृत के तुलनात्मक व्याकरण सहित भारतीय भाषाओं, विशेषकर वैदिक साहित्य आदि, के सम्बंध में प्रचुर ग्रन्थों का प्रणयन एवं प्रकाशन का श्रीगणेश किया। तब से पाश्चात्य देशों सहित भारत में वैदिक काल (मन्त्र–ब्राह्मण–आरण्यक–सूत्र–उपनिषद्काल) से लेकर पाणिनि–कात्यायन–पतंजलि एवं परवर्ती टीकाकारों तक व्याकृत–उपबृंहित भाषाशास्त्रीय तत्वों के सन्दर्भ में यूरोप एवं भारत के स्तर पर खूब अध्ययन,मनन एवं प्रकाशन हुए। इन भाषाशास्त्रीय एवं भाषावैज्ञानिक गवेषणाओं में पाश्चात्य एवं प्राच्य लगभग सभी विद्वानों का यह सुनिश्चित मत मिलता है कि सर्वप्रथम पाणिनि ने वैदिक एवं लौकिक संस्कृत का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कर विश्व को तुलनात्मक भाषाशास्त्र का अवदान दिया। इसके साथ ही पाणिनि ने चौदह माहेश्वर सूत्रों के रूप में पूरी वर्णमाला, वर्णों की संक्षेपन विधि–प्रत्याहार,सन्धि नियम,पदविज्ञान,पदविभाजन,अर्थविज्ञान तथा टि,घु,घि,इत्,घ आदि से छोटे पारिभाषिक शब्दों के प्रादुर्भाव की आधारशिला जैसे भाषावैज्ञानिक अवदान दिये। बाद में पाणिनिकृत अष्टाध्यायी के सूत्रों पर कात्यायन ने वार्तिक की रचना की एवं पतंजलि ने इन दोनो के भाषायी तत्वों का उपबृंहण–समाहार अपने 'महाभाष्य' नामक ग्रन्थ में किया जिसके अध्ययन–गवेषणादि के बाद विश्व के लगभग सभी वैयाकरणों,भाषाविदों एवं भाषावैज्ञानिकों ने अपनी अपनी भाषाओ के लिए कमोबेस पाणिनि के समान व्याकरण देने का प्रयाश तो किया, परन्तु अन्ततः वे पाणिनीय व्याकरण की वैज्ञानिकता के निकष पर सफल नहीं हो सके। अस्तु! मुनित्रय विशेषकर पाणिनी के भाषाविज्ञान के तत्वों से कमोबेस अनुकृत–चमत्कृत व्याकरण भोजपुरी भाषा को व्याकृत करे तो इससे अच्छा क्या हो सकता है। पुनश्च! भोजपुरी के सन्दर्भ में व्याकरणिक अनुशासन के हानि–लाभ की विवेचना के आलोक में इतना तो वांक्षनीय है ही कि संस्कृत–हिन्दी–भोजपुरी की भाषिक–व्याकरणिक प्रकृति–ताशीर के गहन अनुशीलन,अध्ययन,अनुसंधान एवं भोजपुरी की आंचलिक–जनपदीय भाषायी वैविध्य–विभाषा आदि को दृष्टिपथ में रखकर भाषासंगीति/संगीतियो में विद्वान साहित्यकार, भाषाविद एवं भाषा वैज्ञानिक मुनित्रयाभिप्रशस्त भाषा विज्ञान के तत्वों सहित पाश्चात्य वैयाकरणों के द्वारा सुनिश्चित भाषाविज्ञान के तत्वों को भोजपुरी के विकासशील प्रवृत्ति के अनुरूप सर्वसम्मति से समाहितकर एक सर्वमान्य बृहद शब्दानुशासन–व्याकरण तो अब व्याकृत कर ही दें, जो अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के लिए भी उपयोगी सिद्ध हो सकता है। इसके साथ ही मेरा यह भी सुझाव है कि तब उसके नियमों की अनुमोदित परिसीमा में रहकर साहित्य, आलोचनादि की लोकाभिरूचि के आलोक में साहित्य की विभिन्न विधाओं में प्रणयन,सृजन होता रहे। साथ ही एक निश्चित समयांतराल पर विद्वान अपने अपने शोधपरक निरीक्षणादि में जनपदीय–आंचलिक–क्षेत्रीय लोक व्यवहार में प्रचलित शब्दों का जुड़ाव परिमार्जित शब्दकोशों में सतत करते रहें। इसके अतिरिक्त अपनी भाषाशास्त्रीय,भाषावैज्ञानिक,व्याकरणिक एवं साहित्यिक ज्ञान की अल्प समझ, शैक्षणिक उपाधि की लघुता, विद्वानों की छत्रछाया एवं उनके अभिभावकीय मार्गदर्शन की अनुपलब्धता तथा विद्वज्जनप्रशस्त अन्य गुणों के अभावादिक व्यवधायक अक्षमताओं के बावजूद, सुधी साहित्कारों,विद्वानों,महानुभावों तथा भोजपुरी भाषा के पुरोधाओं आदि सभी उदारमना सज्जनों से अपनी इस सीमित प्रज्ञाप्रभूत धृष्टता के लिए क्षमादान की प्रत्याशा में मेरा एक और सुझाव है कि जहाँ तक हो सके,संस्कृत के श्रुति–शास्त्र–पुराणादि एवं श्रेण्य गद्य–काव्यादि



www.bhojpurisahityangan.com

साहित्योपजीव्य ग्रन्थों पर आधारित भोजपुरी की श्रेण्य (classical) रचनाओं में तत् तद् ग्रन्थों में प्रयुक्त तत्सम शब्दों के अर्थ–भाव आदि भाषिक तत्वों के विचलन–विपथनादि से बचने के लिए उनका प्रयोग उनके उसी रुप में होना चाहिए। ऐसी श्रेण्य रचनाओं से इतर अन्य साहित्यिक कृतियों में,जहाँ तक हो सके, तत्सम,तद्भव शब्दों के आम जनता द्वारा प्रयुक्त प्रतिस्थानी शब्दों का प्रयोग हो। हाँ तत्सम,तद्भवादि प्रचलित शब्दों के आंचलिक–जनपदीयादि क्षेत्रीय प्रतिस्थानी शब्द न मिलने पर जहाँ तक हो सके उन्हीं तत्समादि शब्दों का, जब तक भाषा–साहित्य के सभी मान्य या स्थापित विद्वानों,पुरोधाओं,साहित्यकारों आदि की सर्वजनानुसमर्थित भाषा संगीति में उनका तत्सम–तद्भवादि प्रतिस्थानी निर्धारित न हो जाय, प्रयोग साहित्यकारों द्वारा किया जाना भाषा का भाषिक तत्वों से विपथनरहित विकास के साथ ही भाषा की भासुरता की दृष्टि से, मेरी राय में, अधिक उपादेय एवं वरेण्य होगा। अन्यथा तत्समादि के जो प्रतिस्थानी देश–कालक्रमतः जनजिह्वानिःसृत रुप से उपलब्ध नहीं हैं, अपनी अपनी रचनाओं में, उनका व्यक्ति–विषयनिष्ठ स्वकल्पित–स्वविन्यस्त अपभ्रंसीकरण या बलात् तद्भवीकरण भाषिक तत्वों को अभिपुष्टित,बलान्वित करने के बजाय उसके सामान्य प्रवाह में कृत्रिमता, शब्द व उनके प्रयोग की रचयिता सापेक्ष बहुविरुपता, सामान्य पाठकों सहित विद्वज्जनों में बहुधा अस्वीकार्यता आदि नकारात्मकतारुपी पुलिनज दलदल ही सिद्ध होगा। इतना ही नहीं, ऐसी भाषायी बहुविरुपता, विपथनादि, अन्य भाषाओं के शत्रुभावभावित भाषा–कुटिलाचार्यो, अपनी भाषा से इतर भाषा विरोध–अवरोधादि के पुरोधाओं,भाषा–खलों आदि विघ्नसंतोषियों के भाषोपहास–परिहासादिरुप पोषक ओदन का उपसेचन भी सिद्ध होगा। अस्तु! स्वक्षेत्रमृदापुत्रों से स्वतः, किम्वा निसर्गतः प्रभूत, इस नितरां प्यारी एवं सब तरह से समर्थ भोजपुरी को ऐसी एवं अन्य सभी प्रकार की कृत्रिमताओं से बोझिल होने से बचाने एवं अन्य भाषिक विपथन–विरुपताओं को दूर करने के लिए हमारे भाषाविद,भाषा वैज्ञानिक,वैयाकरण,विद्वान रचनाकार,साहित्यकार आदि यथा समय विभिन्न मंचों पर यथावश्यक मंथन कर अभीष्ट निष्कर्ष पर पहुँचने व उन्हें सर्वग्राह्य बनाने का भगीरथ प्रयत्न करें तो नैसर्गिकता, सौन्दर्य, सृजन–सौष्ठव, स्वमृदासुन्वभिनिःसृत समर्थता, प्रगल्भता, चूणान्त–व्यन्जन चारुतादिरुपी भाषायी कहकशाँ में आनेवाला समय नूर ए भोजपुरी मुंतशिर करनेवाले आफताब ए लिसान का होगा, इसमें मुझे किसी शक,शुब्हा की गुंजाइस नहीं दिखती है।

अब मैं इस रचना के वर्ण्यविषय,स्वरूप एवं प्रस्तुति पर वांक्षित प्रकाश डालना आवश्यक समझता हूँ। इसका वर्ण्यविषय मूलतः भागवतीय ही है। मेरे अल्प समझ के अनुसार व्यासजी ने भागवत में वेदान्तदर्शन की आधारशिला पर परमसत्य नारायण या श्रीकृष्ण प्रेम–भक्ति के उपासना रुप प्रासाद को प्रतिष्ठित किया है। इसे दृष्टिपथ में रखकर मैंने भी इस प्रबंधकाव्य के आरम्भ में श्रीकृष्णतत्वबोध हेतु प्रस्थानत्रयी अर्थात् उपनिषद्,ब्रह्मसूत्र एवं गीता के मन्त्रों,सूत्रों एवं श्लोकों की भाव–प्रस्तुति के साथ ही साथ इन ग्रन्थों सहित भारतीय एवं पाश्चात्य दर्शनादि का अपने महाविद्यालय अवधि 1978 से अद्यतन सतत स्वाध्याय एवं अनुशीलन से स्वमानस में ईश्वर–प्रेरणोद्भूत आध्यात्मिक एवं दार्शनिक हृदयोद्गार–अनुभूति एवं विचार को प्रबंध के शुरुआती चार सर्गो–सर्गों सं02 से सर्ग सं0 5 में रखा है। काव्य–सरसता के काव्यशास्त्रीय विद्वानों,आलोचकों एवं काव्य–कमनीयता के मर्मज्ञों का यद्यपि यह मानना है कि आध्यात्मिक एवं दार्शनिक पक्ष काव्य के भावपक्ष को निर्बल बनाते हैं, तथापि प्रेम,भक्ति के रसमय प्रवाह के साथ साथ भारतीय तत्वचिंतन, विशेषतः प्रस्थात्रयीगत विमर्शों की, श्रीमद्भागवत में क्षीर में घी के समान व्याप्ति,प्रवाह के मद्देनजर उक्त भागवतीय क्षीर के मामकीन मंथन के फलस्वरूप अपनी प्यारी भाषा भोजपुरी में उत्प्लावित प्रस्थानत्रयीरूप नवनीत को अपने प्रबंधकाव्य के प्रवेशद्वार पर रखना मैंने इसलिए उचित समझा ताकि प्रगल्भज्ञानी एवं प्रेमविदग्धहृदय प्रकृति के पाठकों के सहित सामान्य पाठकों के लिए भी व्रज की गोपिकाओं के साथ राधारमण श्रीकृष्ण के परम पवित्र विरहविदग्ध प्रेमकथानक में मंजुल–पुनीत प्रवेश ज्ञानस्निग्धता से स्नेहिल हो, उनके हृदय में वाणी–व्यन्जना से परे प्रेमास्पद एवं रसपेशल रुप में प्रविष्ट क्या, उनके आनन्दमय कोश से ही एकसार एवं स्थायी हो जाय। प्रबंधकाव्यागत नव्यानुसंधित यह प्रयास यदि भगवान की अव्यभिचारिणी,अनपायिनी प्रेम–भक्ति को सर्वतोभावेन प्रवृद्ध व सुदृढ़ करने में उपादेय होता है तो मेरे लिए इससे अधिक सुखानुभूति का विषय क्या हो सकता है। यहाँ ध्यातव्य है कि उक्त प्रस्थानत्रयी एवं अन्य स्रोतोद्भूत पदों से जुड़ी छोटी कूटसंख्याओं के विकूटनार्थ संक्षिप्त मन्त्र–श्लोकादि के संकेतों के साथ संक्षिप्त स्पष्टीकरण इस प्रबंधकाव्यरुपी महाकाव्य के परिशिष्ट में मैंने दे दिया हैं, ताकि इच्छुक



www.bhojpurisahityangan.com

पाठक संबंधित मन्त्र,श्लोक,तथ्यों के पदागत भावों की अधिकृत पुष्टि प्राप्त करने के अतिरिक्त, चाहें तो संबंधित ग्रन्थों के अवलोकन से सम्बद्ध विमर्श की ज्ञानानुशयी गहराई में जाकर वांछित ज्ञानलाभ भी प्राप्त कर सकें। मेरे इस नव्यानुसंधित उप्रक्रम–प्रयास को सहृदयी व सुधी समीक्षक,विद्वान एवं आलोचक प्रबंधकाव्यानुगत महाकाव्यादि के लक्षणों में काव्यशास्त्रियों द्वारा स्वीकृत धर्म,अर्थ,काम,मोक्ष के समावेश की मान्यता के अनुरूप होने के कारण इसे शायद प्रबंधकाव्यबाह्य मानना उचित नहीं समझेंगे,ऐसा मेरा विश्वास है। साथ ही आशा है इस प्रबंधकाव्य के नायक श्रीकृष्ण की गोपियों के साथ भक्ति–प्रपत्ति–ज्ञानस्निग्ध अकल्मष प्रेम–विरहकथा की असंदिग्ध एवं आनन्दप्रद बोधगम्यता को दृष्टिपथ में रखकर प्रस्थानत्रय्याभिपुष्ट इस प्रबंधकाव्यसृजनरुपी कार्यान्तर्गत वैशिष्ट्यों तथा त्रुट्यादि पर भी, पाठक एवं समीक्षक अपने अभिमत के साथ समुचित प्रकाश डालने की कृपा करना चाहेंगे।

अब मैं वैदिक वाङ्मय में पुरुषब्रह्म नारायण, जो वस्तुतः श्रीकृष्ण ही हैं–'....कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' , के सर्वप्रथम उल्लेख के सबंध में अपनी जानकारी के अनुसार कुछ प्रकाश डालना उचित समझता हूँ। ध्यातव्य है कि मन्त्रसंहिता काल के बाद सर्वप्रथम शतपथ ब्राह्मण,जो सभी ब्राह्मण ग्रन्थों में सर्वाधिक प्राचीन एवं बृहद है, में पुरुषब्रह्म के नारायण स्वरूप का उल्लेख मिलता है–'पुरुष ँ् ह नारायणं प्रजापतिरुवाच। यज्ञस्व–यज्ञस्वेति. '(शतपथब्राह्मण–12–3.4.1. )। इन्हीं परम पुरुष,परम ब्रह्म,परम सत्य कहे जानेवाले नारायण को आर्ष विद्वान एवं भागवतमर्मज्ञ भागवत में भक्तिभाव के भव्य प्रासाद के रूप में भागवत धर्म को स्थापित करने की आधारशिला एवं उसका शिखरासीन गंतव्य लक्ष्य भी कहते हैं। ब्रह्मा, शिव, नारद, सनकादि प्रभृति बड़े बड़े ज्ञानियों,योगियों,परमर्षियों,मुनिजनों आदि की समझ से परे अपनी दिव्य मानुषीलीला के सम्पादनार्थ देवकी–वसुदेव के समक्ष नररुप में साक्षात् प्रकट हुए इन्हीं नारायण को व्यासजी ने नन्दनन्दन श्रीकृष्ण के रुप में श्रुतिसाररुपी चंदनागुरु से एकसार श्रीमद्भागवतरुपी दिव्योदधि में अवभृथतः स्नात कर उन्हें वयो वार्धक्य में शिश्वानन्द के लिए लालायित यशोदा–नन्द के क्रोडस्थ हृत्पालने में क्रीड़ा करने के लिए कारागृह बन्दी वसुदेव के हाथों पहुँचाये जाने का उद्भाव किया, इन्हीं नारायण के लीलामानुष स्वरुप श्रीकृष्ण को व्रजगोपिकारुपी स्वाति के पराप्रेमाम्बु का चातक बनाया, इन्हीं नारायण श्रीकृष्ण को कनकवत् गोरी गोपिकारुपी मण्याभूषण का केन्द्रस्थ नीलमणि बनाकर परम पुनीत दिव्यप्रेमरस से सम्पूर्ण त्रिलोकी को रसाभिषिक्त करनेवाले सारगर्भित रास का नायक बनाया, इन्हीं नारायण श्रीकृष्ण की बांहों को ब्रजललनाओं की अशमनीय विरहाग्निरुपी जातवेदस के प्रसव के लिए अरणि एवं उत्तरारणि बनाया; इन्हीं नारायणरुपी श्रीकृष्ण के भूमा स्वरुप को इनकी निरतिशयता, परात्परता, अनन्ततादि सहित योगियों के भी अतिध्येय ब्रह्म से भी परे गोलोक में अपने स्वरुप से अच्युत रहकर अनन्त ब्रह्माण्ड,उनके अनन्त ब्रह्मा,वरुण,रुद्र,इन्द्र व मरुतादि ईश्वरों का भी नियन्ता व ईश्वर–गोविन्द स्थापित किया; इन्हीं नारायण श्रीकृष्ण को अक्रूर, सैरन्ध्री कुब्जा, द्विज ललनाओं, कुन्ती, द्रौपदी, भीष्म एवं विदुरादि प्रेमाभक्तिरुपी उफनती–स्यन्दमान नदी–नद्यों का अस्तोदधि दिखाया एवं इन्हीं नारायणरुपी वासुदेव श्रीकृष्ण को व्यासजी ने दुर्योधन,कंश, चाणूर, शिशुपालादिरुपी नराधमों का ग्रसिष्णु व कर्म–ज्ञान–भक्ति की त्रिवेणी में स्नातकर अर्जुनरुपी नर का उपास्य तथा उनके विश्वरुप का दर्शन कराकरं सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में भगवान के उस अचिन्त्य,अद्रष्टव्य रुप का प्रथम एवं सम्भवतः अंतिम द्रष्टा होने का यश अर्जुन को मिलता हुआ दिखाया। और परम कृपालु व्यासदेव परमसत्यस्वरुप इन्हीं नारायण श्रीकृष्ण की इन दिव्यातिदिव्य सांगोपांग कथारुपी कर्म–भक्ति–ज्ञान स्वरुप अमृतसम माधुर्याभिपूरित सान्द्र रसायन से परिपक्व गुठली रहित रसाल के दिव्यरस से परिपूर्ण श्रीमद्भागवतरुपी दिव्य कलशस्थ अप्रतिमानुपम पेय को मुक्ति से भी परे इन्हीं भगवान श्रीमन्नारायण के चरणारविन्दों का मधुप सदा सदा के लिए बने रहने देने की पराकांक्षा जागृतकर भगवत्सच्चिदानन्दोदधि में मस्त रहने के लिए हमारे समक्ष प्रस्तुत करते हैं।

वस्तुतः वैदिक युग के यज्ञानुष्ठान से संबंधित देवताओं में सबसे पराक्रमी देवता विष्णु उत्तरवैदिक युग के ब्राह्मण–आरण्यक–सूत्र–उपनिषद्काल से महाभारतकाल आते आते परम पुरुष नारायण के रुप में स्थापित हो चुके थे। सामवेदीय तलवकार ब्राह्मण के अन्तर्गत छान्दोग्योपनिषद् के तृतीय प्रपाठक,सतरहवें खण्ड के छठें मन्त्र में देवकीपुत्र कृष्ण की चर्चा देखने को मिलती है–'तद्धैतद् घोर आङिग्रसः कृष्णाय देवकीपुत्रायोक्तोवाच। अपिपास एव स बभूव।..छान्दो0.3–17–6'। इन देवकीपुत्र कृष्ण को वैदिक ऋषि घोर आंगिरस ने अक्षयादि फलदायिनी आत्म यज्ञोपासना, जिसमें पुरुष ही यज्ञ है, का उपदेश दिया था। इस सामवेदीय उपनिषद् में उल्लेखित ये



www.bhojpurisahityangan.com

देवकीपुत्र कृष्ण वृष्णिवंशीय कृष्ण हो सकते हैं। इस संबंध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'सूरदास' नामक आलोचना ग्रन्थ में कुछ विद्वानो के निष्कर्ष पर छान्दोग्योदित देवकीपुत्र कृष्ण को वृष्णिवंशीय कृष्ण न होकर किसी वैदिक ऋषि होने की संभावना व्यक्त की है। परन्तु 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' नामक अपने ग्रन्थ में श्री वाचस्पति गैरोला लिखते हैं कि महाभारतकालीन श्रीकृष्ण सामवेद के अनन्योपासक थे और घोर आंगिरस ने इन्हें वेदान्तमत के साथ सामवेद के गानतत्व का मर्म बतलाया था। यहाँ उल्लेखनीय है कि गीता के दसवें अध्याय में श्रीकृष्ण ने विभूतियुक्त वस्तुओं में अपनी विशेष सन्निधि के उल्लेख में चारों वेदों में अपने को सामवेद बताया है। महाभारतकालीन होने की सर्वस्वीकृत स्थापना के साथ ही श्रीकृष्ण वस्तुतः आरण्यक–उपनिषदादि उपासना–ज्ञानमूलक अंशों के साथ अखिल चराचर अस्तित्व के उत्स तो हैं ही, अपनी परात्परता–अनन्तत्वादि गुणैश्वर्यादि के कारण देशकालादि से परे भी हैं। तब भी मानवीय उत्सुकतानुप्रेरित शोधादि कार्य के मद्देनजर छान्दोग्यस्थ उक्त श्रुति की उत्तर वैदिककालीन प्राचीनता के स्थापित तथ्य को दृष्टिपथ में रखकर परवर्ती महाभारतकालीन वृष्णिवंशीय देवकीपुत्र कृष्ण के छान्दोग्योदित देवकीपुत्र कृष्ण के साथ ऐक्य स्थापित करना वैदिक–पुराणशास्त्रीय विद्वानों के अतिरिक्त सामान्य शोधार्थियों के गहन अनुसंधान का विषय तो है ही

अस्तु! उन महापराक्रमी विष्णु या परमपुरुष नारायण–श्रीकृष्ण की भक्ति एवं पराप्रीति से मानवहृदय को सराबोर करने वाले भागवत की रचना में भगवान वेदव्यास तब प्रवृत्त होते हैं जब जय,भारत अथवा महाभारत एवं लगभग सभी पुराणों की रचना के बाद भी उनका मन अशान्त रहता था। फिर एक दिन नारदजी से भागवत का उपदेश पाकर व्यासजी अपने अन्तःकरण की शान्ति के साथ ही स्वयं आनन्द की रसानुभूति करते हुए श्रीमद्भागवत महापुराणरूप भगवद् रसाभिपूरित गुठलीरहित सुपक्व रसाल का परमानन्ददायी रस 'पिबत भागवतरसमाल्यम्' का उद्घोष भागवतीय मंगलाचरण में करते हैं। विद्वान एवं भागवत मर्मज्ञ श्रीमद्भागवत को व्यासजी की अंतिम रचना मानते हैं। वास्तव में श्रीमद्भागवत प्रेमलक्षणा भक्तिमार्ग के पथिको के लिए वेदान्तज्ञान–रश्मि से प्रकाशित प्रकाशस्तम्भ के रूप में प्राप्त होता है। और प्रेम,भक्ति तथा ज्ञान के त्रिरश्मि विशिष्ट यह प्रकाशस्तम्भ न जाने कितनी शदियों से भक्तों एवं पराप्रीति पिपासुओं के हृदय प्रकोष्ठ को जगमग कर ''....यद्वै तत्सुकृतं रसो वै सः ....'' के रस से सराबोर करते आ रहा है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल प्रभृति विद्वानों एवं भागवत मर्मज्ञों का अभिमत है कि भागवत में जिस परमात्मा का रस व्यासजी के द्वारा गोपियों की श्रीकृष्ण में पराप्रीति के पराग से सान्द्रित किया गया है, उसमें उपनिषद् उद्भूत तात्विक चिंतन एवं नारायणस्वरुप श्रीकृष्ण की सर्वतोभावेन उपासना की द्विशीर्षा मथनी लगी है जिससे सामान्य पाठक,भक्ति–पराप्रेम पिपासु अपनी अपनी रूचि के अनुसार ज्ञान अथवा प्रेमलक्षणा भक्ति अथवा दोनो का रसास्वादन कर आनन्दमग्न होते आ रहे हैं। और भगवतीय रसाभिव्यन्जा से अभिव्यन्जित व्रजललना गोपियों एवं उनके प्रियतम श्रीराधाकृष्ण के परम पुनीत एवं परमानन्ददायी वृत्त से अभिभूत एवं पूर्णतः सराबोर हुआ मैंने भी उसी भागवतीय निस्राव से सतत निस्यंदित होनेवाले अभिषव को, इस प्रबंधकाव्य में भोजपुरी शब्द–अर्थ–भाव व्यन्जनारुपी निक्षेपादि से गोपी–कृष्ण के पराप्रीति के कथानकरुपी चषक में, कृष्णानन्दासवरुपी सान्द्र, मदिर रसायन बनाकर, पाठकों के आजिह्वा पर्यन्त कण्ठ को भावार्द्र करते हुए उनके मन–हृदय को तृप्तोन्मत्त करने के लिए प्रस्तुत किया है।

भागवतीय तत्वचिचंतन में व्याप्त उपनिषद् के ऋषियों का ब्रह्म विमर्श, उसके उभयलिंगात्मक, किम्वा प्रतीयमान परस्पर विरुद्ध–सगुण एवं निर्गुण,साकार–निराकार स्वरूपों को लेकर, उसकी उपासनानिशित मनुष्य के औपाधिक आत्मारुप बाण से वेद्धव्य लक्ष्य–अक्षरब्रह्म एवं उससे प्राप्तव्य सच्चिदानन्द की ओर अग्रसर होता है। आर्ष चिंतन परम्परा में गुरोपबृंहित भक्तिस्निग्ध ज्ञान की महनीय पृष्ठभूमि श्वेताश्वतरोपनिषद् के 'तपः प्रभावाद्देवप्रसादाच्च'..6–21 तथा 'यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ'–श्वेता0 6–23 आदि मन्त्रों से स्पष्ट एवं पुष्ट होती है। इसी आधारशिला पर व्यासजी के द्वारा तत्वचिंतन की वैदूर्य–मुक्तामणियों से गोपी–कृष्ण के अकल्मष प्रेमप्रासाद का श्रृंगार किया गया। प्रेमलक्षणाभक्ति का मानव हृदय में उद्रेक स्वाभाविक होता है, जो चैतन्य महाप्रभु जैसे अकल्मष,पराभक्ति–प्रपत्ति–निष्कामता–वैराग्यादि से पुनीत महाभागवतों में उनकी भावोन्मत्तताजन्य मूर्च्छादि के रुप में हमें अक्सर दिख जाता है। यह पश्चिमी रहस्यवादियों एवं सूफियों व अन्य मतावलम्बियों की तत्व के केवल अज्ञात,निराकार होने की पूर्वस्थापना–पूर्वाग्रहादि के आलोक में रहस्योन्माद या



www.bhojpurisahityangan.com

रहस्यानुभूति का प्राकट्य नहीं, अपितु परमतत्व के शास्त्रनियत अर्चाविग्रहादि सौलभ्यता से अनुगृहीत उपासक की भक्त्योद्भूत पवित्र आकांक्षानुप्रेरित अपने आराध्य–इष्टदेव के प्रति रसाभिसिक्त हृदयानुभूति है। कहना न होगा कि भगवद् भक्तों,प्रपन्नों एवं गोपीभाव से भावित पराप्रेम पिपासुओं का सर्वस्व यही हृदयानुभूति है। इस रसाभिसिक्त हृदयानुभूति की व्यंजना जिन हृदयावर्जक श्लोकों,गीतियों द्वारा व्यासजी ने की है, उसकी यद्यपि वैसी ही भावावेष्ठित अभिव्यंजना किसी अन्य भाषा में होनी कठिन है, फिर भी व्यासजी के द्वारा भावुकों के लिए प्रस्तुत इस रस का आलम्बन लेकर लगभग सभी भाषा के भावुक,कवि,टीकाकार व महाभागवत आदि अपनी अपनी रसानुभूति के अनुरूप गोपीकृष्ण के लौकिक सा प्रतीत लोकेतर प्रेम का चित्रण अपनी लेखनी,उद्बोधनों आदि से करते आ रहे हैं। इसी शृंखला में मेरे भी प्रयास का प्रकटीकरण इस भोजपुरी प्रबंधकाव्य के रूप में आपके सामने है। इस प्रसंग में यह उल्लेख्य है कि परमात्मा की भक्ति के लिए तत्वचिन्तक या ज्ञानी होने की अनिवार्यता नहीं है। भक्ति तो अपने आराध्य, उपास्य को लक्षित उसके प्रति ज्ञात, अज्ञात स्वाभाविक आकर्षण एवं उससे उत्पन्न अव्यभिचारी हृदयोद्गार है। यह वस्तुतः किसी पूर्वापेक्षित ज्ञान,लेन–देन,स्वार्थ आदि से परे अपने उपास्य, इष्ट से प्रेम के लिए प्रेम का हृदयोद्भूत निवेदन है। भगवान के भक्तों एवं गोपिकाभावभावित पराप्रेमपिपासुओं का भगवदानन्दोदधि में निमज्जित व निमग्न यह निवेदन उनके द्वारा सर्वविध अलक्षित रखने के प्रयासों के बावजूद उनके गद्गद् कंठ एवं अश्रुप्रवाह के रूप में लोगों को अक्सर दिख जाता है। भक्तों,प्रपन्नों,पराप्रीतिरसिकों की इस स्थिति में उन्हें ज्ञानियों के लिए प्राप्तव्य लक्ष्य–मोक्ष,कैवल्य की भी कोई अहमियत नहीं रहती है। भक्त,पराप्रेमानुरागी प्रपन्न का हृदय तो अपने सामने परमात्मा के अर्चाविग्रह को सुप्रभातपरक श्लोकों, पदों द्वारा उन्हें प्रातःकाल प्रेमपूर्वक जगाने से लेकर स्नान कराने, राग,भोग अर्पित कर पंखा झलकर आनन्दित करने एवं सायंकालीन पूजा,अर्चन के उपरान्त उन्हें रात्रि विश्राम कराने की दिनचर्या में स्वाभाविकरुप से आनन्दित होता है। उनके लिए भगवान पश्चिमी रहस्यज्ञानियों के सिर्फ आज्ञात अथवा निराकारतारुपी कनकपिटारी में अनुमेय नहीं होते हैं। वे तो अर्चासौलभ्य से घर–मंदिर में शास्त्रतः अथवा अपनी अदम्य भगवद्–भावानुगत प्रतिष्ठित भगवान के विग्रह को साक्षात् हरि मानकर विशुद्ध प्रेमपूर्वक उनकी आराधना,उपासना में ताउम्र तल्लीन रहते हैं। वस्तुतः भगवान के सच्चे भक्त का हृदय स्फटिकमणि के समान स्वच्छ एवं पारदर्शी, किन्तु अपने उपास्य के उदार चरित एवं भक्तवत्सलता के सतत गुणानुवाद,चिंतन से भावार्द्र होकर नारिकेलवत् अन्तर्रसार्द्र एवं सुकोमल होता है। भगवान का सच्चा भक्त तो अपने भगवान को सभी में और अपने सहित सभी को भगवान में देखता है। आश्चर्य है श्रुतियाँ इसी आशय का उद्घोष 'यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति। सर्वभभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्स्यते।।–ईशावास्योप0–6 में एवं अन्यत्र जगह जगह वर्षों से करती आ रही हैं। फिर तो उसके लिए परमात्मा कोरी अज्ञेयता और संशयात्मक रहस्य से आवृत्त कहाँ रह जाता है। उसके लिए न तो भगवान अदृश्य या अज्ञात हैं और न वह भगवान के लिए ओझल है। परमात्मा श्रीकृष्ण के शब्दों में–'यो मां पश्यति सवत्र सर्वं च मयि पश्यति। तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति।।'–गीता 6.30। अब यदि ऐसे भक्तों से इतर परमात्मा के निराकार, निर्गुणस्वरुप की उपासना करने वाले तत्वज्ञानियों, अपने आस्थागत तत्व में प्रतिष्ठित सूफियों एवं पश्चिमी रहस्यवादियों एवं श्रुत्यास्थानुगत ज्ञानियों की बात की जाय तो वस्तुतः अव्यक्त या अज्ञात की ऐकान्तिक, किम्वा किंचित् एककोणीय उपासना भी अक्षर ब्रह्मरुप उसी परमात्मा का चिंतन है, जिसमें समबुद्धि,सम्पूर्ण प्राणियों के हितैषी ज्ञानी,योगी प्रभृति निराकारोपासक व सूफ़्यादि उस निराकार एवं अभिव्यक्ति से परे अक्षर,कूटस्थ,नित्य,अचल परमात्मा में सतत स्थित होकर बहुधा निषेधमुख विधा से रमते हैं। और उस परात्पर सत्ता ने यदि उनकी अकल्मषता,सभी प्राणियों में समभाव, निर्वैरता एवं कर्मफल में अनासक्ति आदि उपासनागत आस्था निरपेक्ष अथवा श्रुति–शास्त्रादि प्रशस्त सद्गुणों से किंचित् प्रसन्न होकर उन्हें वरण कर लिया तो वे समुद्र में मिलती हुई नदियों की तरह उस एक साथ साकार–निराकार,सगुण–निर्गुण एवं इन सभी आख्याओं से परे उस ब्रह्मसत्ता में विलीन या एकाकार भी होते सुने जाते हैं, जो श्रुतियों, ''यथा नद्यः स्यन्दमाना समुद्रे......तथा विद्वान् नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरूषमुपैति दिव्यम्–मु03. 2.8 ,'' तथा ''स यथेमा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रायणाः समुद्रं प्राप्यास्तं गच्छन्ति....''.प्रश्नोपनि0–6.5 आदि में सुसम्पुष्ट है। परन्तु उन्हें जो उस कूटस्थ,निराकार की अपरोक्षानुभूति होती है उसे वे चाहकर भी कैसे कहें। बहुधा कहते भी नहीं। वे तो जीवन–मुक्ति प्राप्त दशा में भी प्रारब्ध के अवसान तक प्रायः मौन ही रहते हैं। क्योंकि परात्परब्रह्म–परमात्मा मन, वाणी का विषय ही नहीं। पवित्र अन्तःकरण में उसकी बस परमानन्दमयी अनुभूति होती



www.bhojpurisahityangan.com

है, जो उनके दिव्यप्रभामण्डल में जनसामान्य को प्रायः निःशब्द दिखती है। और जनमानस को श्रेयस्, जनकल्याणार्थ उन जीवन–मुक्त महात्मा से कुछ सुनने की जिद हो तो वे परमात्मा की औदायर्ता,सौशील्यता,सौलभ्यतादि अहैतुकी कृपा–वात्सल्यताभिजन्य भवादिचक्रजनित दुःख–बंधनों से जनमुक्ति के प्रण आदि सद्गुणाशयों से भावार्द्र होकर बस परमात्मचिंतन–गुणानुवाद की मनो–वाङ्मयी चेतना जागृत करनेवाली श्रुतियों सहित शास्त्र–पुराणादि में वर्णित उस परात्पर ब्रह्म की, पात्र–स्थानानुरुप निर्गुण/सगुणस्वरुप की उपासना की ओर श्रोता सापेक्ष संकेत कर देते हैं। स्वमताभिगठन, स्वविन्यस्त उपासनापद्धति का उद्घोष, प्रचार, प्रसारादि तो ऐसे आत्मवेत्ताओं,महात्माओं की कल्पना तक में भी होता ही नहीं। अहंकार,स्वार्थ,मत्सर,संकीर्णता,विद्वेषादि हेय गुणों से सर्वथा अस्पृष्ट उस आत्मवेत्ता की पूण्याभा से जनमुक्ति,जनात्मकल्याण स्वतः प्रस्फुटित होता है। यह लोकानुदृष्ट एवं लोकानुभूत तथ्य है, जो तत् तद् प्राचीनतानुरचित शास्त्रों अथवा उन उन महापुरुषों के इतिवृत्तों में संरक्षित है। अब वहीं दुसरी तरफ अनुभवकर्ता की आस्था सापेक्ष सम्यक्–समेकित ज्ञानाभिपुष्ट उपासना–प्रपत्ति से किसी ने उस अक्षर,एक साथ निराकार,साकार तथा इनसे परे कूटस्थादि परमतत्व की स्वपराचेतनास्फूर्त बहुधा निराकाराग्रही अपरोक्षानुभूतिप्रसूता प्रमा को निर्वचन के स्तर पर लाना चाहा तो वह ठीक ठीक वह और उतना नहीं कह सका, जिसकी अपरोक्षानुभूति उसे उस तत्व–परमात्मा के बारे में हुई। और यह बहुधा सर्वश्रुत और सर्वानुदृष्ट तथ्य है कि रहस्यविधा से स्वानुभूत परमतत्व को कहनेवाला जितना कह सका तो उस कहने मात्र से समष्टिगत व वस्तुतः एक साथ साकार–निराकार व इनसे परे सत्ता का उसी क्षण उस साकारागत से व्यष्टि–सीमित,किम्वा बहुधा एककोणीय व संकुचित निर्वचन स्वतः हो गया। बुद्धि की स्वगत इयत्ता से परे परम तत्व को उस वाणिजात निर्वचन में तद्रूप, उतना ही और वैसा ही एवं सर्वथा अविमर्शणीय मानना भारी भूल है। फिर भी तब बहुधा केवल निराकार आस्थागत की अनुभूति के साकार व्यष्टिगत उस निवर्चन से परमसत्ता के स्वरूपबोध का एकाधिकृत सन्देशवाहकत्व,दौत्य, पैगम्बरत्व आदि सद्यः या उसके वचनानुशयी जैविक कारकों से कालक्रमानुगत प्रसूत हुआ। और तब चतुष्कोट्याभिबद्ध मनुजबुद्धिसीमागत ग्राह्यता से परम तत्व के वस्तुतः अनिच्छित सीमितीकरण से उसकी बहुधा केवल एककोणीय निराकाराग्रही अविमर्शणीयतानुपुष्ट श्रेष्ठता के संकुचित कोण सहित धर्म–पंथादि सामने आये। फिर तो उसके साथ या कालक्रमानुगत अनिवार्य आनुषंगिक परिणाम के रुप में मानवकृत कल्मषों की प्रवृत्ति–निवृत्ति से संबंधित आचारों के कूटीकरण (codification) आदि से उपबृंहित उस धर्म, पंथादि के पैगम्बरी,इब्राहिमी उत्स से ग्रीकोत्तर धर्म दर्शन में पैगम्बरवाद की विचारधारा जुड़ी। परम सत्ता के केवल निराकाराग्रही ऐसे पैगम्बरतः स्वरुपबोध का वैशिष्ट्य है इनमें परम सत्ता के, उसके वैश्विक तन्त्र (cosmic system) अर्थात उसके किसी भी महिमा,विभूति,देवतादिरुप सहायकों के सूक्ष्म अस्तित्व का खण्डनपूर्वक, एकेश्वरवाद की स्थापना। लेकिन अकाट्य तथ्य यह भी है कि परम सत्ता की अनन्त महिमा में मनुज अस्तित्वरुपी उसकी एक छोटी महिमा या अभिव्यक्ति से ही उसके स्वरुप के आर्ष–अनार्ष साकार,निराकारादि निर्वचन हुए हैं। उस परम तत्व की महिमा में केवल मनुष्य ही नहीं पादप,पशु,कीट पतंग,सरीसृप,सूक्ष्म जीवादि रुप से दृष्टिगत होनेवाले अस्तित्व के अतिरिक्त वायु, ध्वनि,सूक्ष्मतरंग, एक्सरे आदि की तरह मनुजदृष्टि से साधरणतः नही दिखनेवाले अस्तित्व–भूत,प्रेत,जिन्न,यक्ष,किन्नर,गन्धर्व,देवतादि भी हैं, जिनका तत् तद् धर्म,पंथादि के प्रभवपूर्व से मनुज अस्तित्व से अनुभूत होने के उल्लेख मानव सभ्यता के इतिहास में किसी न किसी रुप में भरे पड़े हैं। इन उल्लेखों की व्याप्ति केवल हिन्दू धर्म में ही नही, अपितु पैगम्बरी धर्मो सहित विश्व के प्रायः सभी ईशानीश धर्मों,पंथों में भी मिलती है। परम तत्व या परम सत्याख्यायित ईश्वर की सृष्टि का अर्थ है उसके विभिन्न तन्त्र (Different System) ,जो सृष्टि संचालन में सहायक होते हैं, का वैश्वीकरण जो धर्मास्था निरपेक्ष होता है। ईश्वर–सृष्ट तन्त्र को कोई माने या न माने इससे ईश्वर की महिमा–गरिमा में कोई फर्क नहीं पड़ता। और हाँ, न मानने से उपासनगत काठिन्य साफ दिखता है। कोई राष्ट्राध्यक्ष या बड़े अधिकारी से प्रायः सीधे कहाँ मिल पाता है। उसे तो विहित प्रक्रिया का पालन करना ही पड़ता है। परमात्मा के समग्र तन्त्र की अवयवादि रुपी ये महिमा–विभूतियाँ, पृथ्वी से उत्पन्न वनस्पतियों की तरह, उससे स्वतः व्यक्त–तन्त्रागत सृष्टि के तदृत् नियन्त्रित्व में उस परम तत्व के प्रति श्रद्धा को सुगम व सुबोध रुप से पुष्ट करने एवं उसके पारमार्थिक अद्वैतत्व–एकत्व को दृढकर उसकी सीधी उपासनागत काठिन्य के संङ्घर्ष से मुक्त उसे चरमोपास्य बनाने के लिए हैं, न कि उसके अस्तित्व की निरपेक्षता,शिवाद्वैतता एवं प्रपञ्ोपशमता में व्यतिक्रम डालने व उसके खण्डन के



www.bhojpurisahityangan.com

लिए। सापेक्ष भला अपने निरपेक्ष का खण्डन कैसे कर सकता है। अस्तु! निरपेक्ष सत्य का सापेक्ष व्यष्टि द्वारा न तो पूर्ण निर्वचन सम्भव है और न ही उसके ज्ञान की इति,पूर्णत्व,अविमर्शणीयता आदि से युक्त मताभिगठन एवं तदानुषंगिक आचारादि के कूटीकरण आदि से तद्प्रसूत धर्म,पंथादि की त्रुटिरहिततादि का आग्रह ही। इसीलिए 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह' को डंके की चोट की तरह कहनेवाली तैत्तिरीय श्रुति मन–वाणी द्वारा ब्रह्मतत्व के निरपेक्ष निर्वचन की सीमा को साफ दिखलाती है। परन्तु वहीं श्रुतियों के द्वारा निर्दिष्ट–अभीष्ट विष्णु के परमपद, 'तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्–ऋग्वेद 1–22–20, को ज्ञानचक्षु द्वारा परम तत्व का साक्षात्कार करने की, किम्वा पाप्मत्वादि को साधनचतुष्टयादि से नष्टकर परमब्रह्म की निराकारता एवं सगुणत्व के समुच्चयबोधादि से अभिपुष्टित निष्ठा–उपासना की संसिद्धि से उसमें सदा के लिए सायुज्यतादि मोक्ष भी प्राप्त करने का श्रुत्योल्लेख तो मिलता ही है। दुसरी तरफ 'नेति नेति'–यानि परम तत्व 'ऐसा ही नहीं है और इतना ही नहीं है' के स्पष्ट श्रुत्योद्घोष द्वारा परम तत्व या परम सत्य के सम्पूर्ण अथवा निरपेक्ष निर्वचन की इयत्ता के अतिरिक्त उसका पूर्ण ज्ञान होने के स्पष्ट खण्डन से मनुजबुद्धि की सीमा साफ दिखती है। और यह वैज्ञानिक निकष पर भी पूर्णतः अभिपुष्ट, अतएव सर्व–स्वीकार्य है। देखिए केनोपनिषद् व्यष्टिगत अस्तित्व के द्वारा उस परमतत्व ब्रह्म को पूर्णतः जानने का अभिमत रखनेवाले का उपहास उड़ाते हुए स्पष्ट शब्दों में कहता है–" यदि मन्यसे सुवेदेति दहरमेवापि नूनम्....." अर्थात यदि तू ऐसा कहता है कि मैं ब्रह्म को पूर्णतः जान गया हूँ तो निश्चय ही तू ब्रह्म का अत्यल्पांश ही जानता है। ब्रह्म का जो रूप देवताओं को ज्ञात है, वह भी थोड़ा ही है"। अब आगे के मन्त्र–"नाहं मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च। यो नस्तद्वेद तद्वेद नो न वेदेति वेद च।।" में मन्त्रद्रष्टा ऋषि परमसत्य की अनुभूति के स्वरूप का प्राकट्य बस इस रूप में अपने शिष्यों से कराते हैं–" हम शिष्यों में से जो "मैं न तो यह मानता हूँ कि मैं ब्रह्म को पूर्णतः जान गया और न यही समझता हूँ कि उसे नहीं जानता। हममें से जो उसे 'न तो नहीं जानता हूँ और न पूर्णतः जानता ही हूँ' ऐसा मानता है वही ब्रह्म को जानता है"। परम तत्व अथवा परमसत्य का तैत्तिरीय–केनश्रुति व अन्यत्र प्रशस्त अनन्तत्व,असीमत्व यही है।

अब परम तत्व के उपर्युक्त विमर्श में आगे यह भी विचारणीय है कि साकार–निराकार,सगुण–निर्गुण आदि प्रतीयमान विरुद्धधर्मी एवं इन सभी निर्वचनों से परे भी उस परमतत्व या परमसत्य की आख्यावाले ब्रह्म का 'केवल निराकार है' की परिधि में साक्षात्कार,स्वानुभूति करने का पैगम्बरतः दावा करनेवाले इब्राहीमी मत,पंथादि द्वारा अनन्त,असीमित,पूर्णनिर्वचन से परे उस परमसत्य के दुसरे पहलू में उसके सगुण–साकार स्वरुप के प्रकटीकरण–मूर्ति,अर्चाविग्रह एवं उसकी उपासना के शास्त्रादि–प्रशस्त अभिमत का प्रायः विद्वेषपूर्ण और यत्र तत्र हिंसक सीमा तक खण्डन भी, उनके मत के आनुषंगिक अंग के रुप में मिलता है। परन्तु उस अनन्त,असीमित,एक साथ साकार,निराकार एवं उससे परे,मनुजबुद्धि एवं पराचेतनागत अनुभूति से भी सम्पूर्णतः अकथनीय–अज्ञेय परमतत्व का क्या यह इच्छित–अनिच्छित,अपरोक्षतः–परोक्षतः अज्ञानज व विजुगुप्साजन्य सीमितीकरण,निरसन और घोर पार्थवीकरण नहीं है? क्या एक साथ निराकार,साकार तथा इन निवर्चनों से परे उस परमतत्व का स्व–स्वपराचेतनाभिपुष्ट निर्वचन–सीमितीकरण,एककोणीयता,अविमर्शणीयता आदि के अभिमत वाले धर्म,पंथादि एवं उनके मतावलम्बी यह कह सकेंगे कि उनके सुदृढ़ मत के इयत्ताबाह्य एवं उनके उद्घोष से पूर्व मनुज अस्तित्व का ईश्वर, नियन्ता था, या है भी, कि नहीं। उनके तत्तद् मताभिगठनादि से पूर्व यह दुनिया तो थी। तब इसे किसने बनाया। किम्वा यदि किसी की दृष्टि में परमसत्ता–परमेश्वर का अस्तित्व एक साथ सगुण–निर्गुणादि वदतोव्याघात कथनयुक्त होने के साथ ही मूर्तिपूजादि की मान्यताओं एवं अन्य विभिन्न दोषानुग्रस्त ससीमत्व से हेयत्वयुक्त रहा है, तो अब उनके परमतत्व के दौत्यादिजन्य 'केवल निराकार' मताभिगठन में उसके स्वरुप–ईश्वर धारणा के बाद पूर्वपक्ष के परमतत्व विषयक तपःपूत अकल्मष मनुजविमर्शानुदृष्ट सर्वनियन्ता ब्रह्म,परमात्मा या ईश्वर, जो श्रुत्योल्लेखित अक्षरत्व,अनन्तता,भूमत्वता,कूटस्थता,अविनाशित्वादि विधिमुख निर्वचनों के साथ साथ निषेधमुख निर्वचनों में 'नेति,नेति आदि के स्पष्ट निर्वचनों,उद्घोषादि से महिमान्वित है, का सूर्य,तारे,ग्रह,नदियाँ,समुद्र क्या पूरी प्रकृति,पूरे ब्रह्माण्ड आदि पर अब किस सीमा तक स्वामित्व व नियन्त्रणादि रह गया है, किम्वा अब समाप्त ही हो गया है। यदि उनके मतबाह्य मनुजसमुदाय की ससीमता,बहुदेवास्था,मूर्तिपूजनादि हेयत्वयुक्त वस्तुतः किसी ईश्वर,नियन्ता,विधाता,पाप–पूण्य का विपाककर्ता का अब अस्तित्व नहीं रहा, या है भी तो हेयत्वानुग्रस्त होने के



www.bhojpurisahityangan.com

कारण काबिल ए इलाही नही है, तो वे कैसे जी, मर रहे थे या अब कैसे जी,मर रहे हैं। क्या उनके पूण्य–पाप अविचारित ही रह जाते हैं, आदि आदि।

दुसरी तरफ तपःध्यानानुप्रसूत परम सत्य की अपरोक्षानुभूति कर आत्मा,ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार किये बिना जन समुदाय को उनके दुःख निवृत्ति का मार्ग बतलानेवाले महात्मा बुद्ध के सामान्य–सरल उपदेशों को क्षणिकवाद की अतिव्याप्ति से आक्रान्त करनेवाले बौद्ध नैयायिक–दार्शनिक हैं। आर्ष परम्परा के ब्राह्मण विद्वानों से तर्क–न्याय–मीमांसाशास्त्रगत किंचित् अधिक विशद बौद्ध विमर्श–खण्डन,मण्डन की सुदीर्घ परम्परा में केवल भव–संसृति रुप दुःखादि की निवृत्ति हेतु चार आर्य सत्यों में कारण–कार्य विमर्श–प्रतीत्यसमुत्पाद एवं तद्योद्भूत आष्टांगिक मार्ग के अनुयायियों की क्षण क्षण परिवर्तित चेतनाओं के द्वारा कृत निर्वाणानुशयी साधनादि का क्रमसः विनास–'कृतविप्रणाश' एवं उसकी निरंतरता में अंतिम कड़ी की चेतना को बिना साधनादि उपाय किये–'अकृताभ्यागम'जन्य भव,दुःख–निवृति–निर्वाण की जो अवधारणा है वह वस्तुतः उनके ही न्यायशास्त्रगत स्वस्थ तर्क एवं युक्तियुक्तता का खण्डन है। चेतना की सर्वानुभूत स्मृति,प्रत्यभिज्ञा–स्मरण की असम्भावना या क्षति एवं कर्म सिद्धान्त के लोपादि से विशिष्ट यह बौद्धोपहार विद्वानों एवं सामान्यजनों के लिए भी तत्वज्ञान के विशद चिंतन की दृष्टि से ध्यातव्य एवं विमर्शणीय है। बुद्धोपदिष्ट प्रतीत्यसमुत्पाद से उद्भूत अनित्यवाद–अनात्मवाद हीनयान मत के सर्वास्तिवादी–वैभाषिक,सौत्रान्त्रिक–स्वतन्त्र विज्ञानवादी से लेकर महायान मत के शून्यवाद और विज्ञानवाद में तर्क–युक्ति रहित आत्यंतिक 'क्षणिकवाद' के अवियोज्य व अनावश्यक आग्रह से ग्रस्त दिखता है। हीनयान प्राचीनतम बौद्ध सम्प्रयदाय है। यह स्थविरवाद या पाली के थेरवाद के रुप में भी प्रचलित है। हीनयान में क्षणभंगुरता भौतिक वस्तुओं के अतिरिक्त मनुष्य के साधारण अनुभव में आने वाली आत्मा तक पर लागू है,जबकि तीनो कालों में सभी वस्तुओं के अस्तित्व रहने की मान्यता उनके सिद्धान्त की रीढ़ भी है। क्षणिकत्वानुप्रसूत यह अनात्मवाद–पुद्गल नैरात्म्य और वस्तु–धर्म नैरात्म्य महायान के भी सभी सम्प्रदायों–माध्यमिक या शून्यवाद तथा योगाचार या विज्ञानवाद का भी अवियोज्य वैशिष्ट्य है। हालाँकि बुद्ध एवं सभी हीनयानी–बाह्य प्रत्यक्षवादी–वैभाषिक तथा बाह्यानुमेयवादी–सौत्रान्त्रिक या स्वतन्त्र विज्ञानवादी तीनो कालों में वस्तुओं के क्षणिकत्वानुग्रस्त अस्तित्व में विश्वास करते हैं। योगाचार–विज्ञानवादी वसुबन्धु के अनुसार जो सभी वस्तुओं का अस्तित्व भूत,वर्तमान तथा भविष्य में स्वीकार करते हैं, वे सर्वास्तिवादी हैं। सौत्रान्त्रिकों का आधार ग्रन्थ सूत्त–पिटक है तथा वैभाषिक सम्प्रदाय मूलतः बौद्ध ग्रन्थ विभाषा पर आधारित है। प्रमाण के रुप में सौत्रान्त्रिक दो प्रमाण– प्रत्यक्ष तथा अनुमान–स्वार्थानुमान व परार्थानुमान को अपनाते हैं। वहीं वैभाषिक भी प्रत्यक्ष और अनुमान को प्रमाण मानते हैं, जो इन दोनों की ज्ञान–मीमांसा का आधार है। ये दोनों ही चित्त एवं वस्तु का अस्तित्व स्वीकार करते हैं। हीनयान में निर्वाण हेतु स्वावलम्बन–व्यक्तिगत साधना तथा सन्यास पर बल दिया गया है। हीनयान में जीवन का चरम लक्ष्य 'अर्हत्' होना यानि निर्वाण की प्राप्ति माना गया है और निर्वाण की व्यक्तिगत एवं संकुचित धारणा के कारण बाद में विकसित महायान सम्प्रदाय में इसे हीनयान या छोटी गाड़ी कहा जाने लगा। महायान में व्यक्तिगत मुक्ति की जगह संसार के समस्त जीवों की मुक्ति पर बल दिया गया है, जिसमें 'बोधिसत्व' की प्रत्येक व्यक्ति के द्वारा प्राप्तव्यता के कारण प्रत्येक व्यक्ति को सम्भाव्य बुद्ध कहा गया है। बौद्ध धर्म की इन सामान्य विशेषताओं के बाद जब हम बौद्ध ज्ञान–मीमांसा एवं तत्व–मीमांसा का सिंहावलोकन करते हैं तो इस सन्दर्भ में विमर्शणीय है कि उपनिषदों की 'आत्मा', जो मनुष्य जाति की जन्मजात स्वाभाविक अनुभूति है, का बौद्ध धर्म के सभी सम्प्रदायों में निषेध देखने को मिलता है। जिसे सामान्य मनुष्य निजी 'अहं' से अपनी पहचान–अपना अस्तित्व जोड़ता है उसे आर्ष ग्रन्थों में व्यावहारिक आत्मा,प्रमाता,विज्ञानात्मा या सम्प्रसाद कहा गया है। परन्तु बौद्ध धर्म इस व्यक्तिगत अनुभवकर्ता–ज्ञाता,विज्ञाता,मन्ता को क्षण क्षण परिवर्तित होनेवाली चेतना–विज्ञानप्रवाह मात्र मानता है। ऐसी स्थिति में कर्म–सिद्धान्त,जीवों में दृष्ट प्रतिभिज्ञा–स्मृति एवं पुनर्जन्म की अवधारणा तर्क–युक्ति के धरातल पर टिक नहीं पाती है। आश्चर्य यह है कि विज्ञाता के विज्ञान प्रवाह की क्षण क्षण परिवर्तशीलता के बाद भी बौद्ध मत में पुनर्जन्म होने की मान्यता है। कहा जाता है कि पूर्व की चेतना अपनी कर्म–वासनादि अगली विज्ञान संतति को देने के बाद ही नष्ट होती है। परन्तु क्षणिकवाद में परिवर्तन के अनवरत सातत्य के कारण विज्ञानप्रवाह का ऐसा स्थानांतरण सम्भव नही दिखता। बुद्ध ने दीपक की ज्योति से दुसरे दीपक के जलने के समान पुनर्जन्म की व्याख्या की है। परन्तु व्यक्ति जैसे ही मर जाता है,पहले से ही क्षणिकत्वाभिग्रत



www.bhojpurisahityangan.com

उसकी अंतिम चेतना या विज्ञान का प्रवाह खण्डित हो जाता है। तब उस व्यक्ति का, उपनिषदों की पंचाग्निविद्या की मान्यता में उसके आत्मा–सूक्ष्म शरीर के वाहक श्रद्धारुपी जल–समिधा का प्रथम द्युलोकरुपी अग्नि में इन्द्रियाभिमानी देवताओं द्वारा हवन से जीवात्मा का सोमराजभाव धारण यानि देहारम्भक अणुओं से संयोग होता है। इस सोमात्मक देहारम्भक तत्वरुपी समिधा का दुसरी अग्नि पर्जन्य या मेघावरण में हवन से वर्षा जल की उत्पत्ति होती है। वर्षाजलरुपी समिधा के तीसरी अग्नि–पृथ्वी में हवन से विभिन्न प्रकार के अन्न–धान,गेहूँ,उड़द,चना आदि सहित वर्षा में बिजली कड़कने से निष्क्रिय नाइट्रोजन का टुटकर पृथ्वी की मिट्टी में नाइट्रोजन डाइऑक्साइड तथा नाइट्रस ऑक्साइड के रुप में प्रोटीन के पूर्वरुप एमिनो एसिड आदि की उत्पत्ति होती है। स्टार्च,प्रोटीन से युक्त णान,गेहूँ आदि सहित मांसादि रुपी अन्न–समिधा का पुरुष–नरजीवरुपी चौथी अग्नि में हवन से नर जनन–द्रव्य,वीर्य की उत्पत्ति होती है। इस वीर्यरुप समिधा का  विभिन्न स्त्रीयोनिरुपी कुण्ड में धधकती स्त्रीतत्वरुपी पांचवी अग्नि में हवन से अन्नानुशयी जीव के रुप में आत्मा–जीव का विभिन्न योनियों में पुनर्जन्म होता है, न कि दीपक की बुझती लौ से स्त्री जाति की कोख में दुसरी लौरुपी दीपक के जलने से–जीव का पुनर्जन्म। पुनर्जन्म का यह औपनिषदिक सिद्धान्त–पंचाग्निविद्या, छान्दोग्य एवं बृहदारण्यक का गूढ़ एवं तपः–श्रद्धापूर्वक उपासनीय श्रेयस्कर तत्व है,जिसे जानकर श्रद्धा–तपपूर्वक वन–स्वगृहासक्ति से रहित वानप्रस्थादि आश्रम में सर्वासक्ति रहित ब्रह्मोपासना करनेवाले किसी संयोगवश पंचपतितों से संसर्ग के बावजूद अर्चिरादि–उत्तरायण मार्ग में देवयान से परब्रह्म नारायण को प्राप्तकर सभी प्रकार के बंधनों से सदा के लिए मुक्त हो जाते हैं,उनका धरा–भवमण्डल में पुनरागमन नहीं होता है। इनसे इतर ग्रामादि में इष्ट–यज्ञ,पूर्त–लोकोपकारी पूण्यकार्य करनेवाले पंचाग्निविद्यावेत्ता धूमयान का  अनुशरणकर स्वर्ग को प्राप्त करते हैं एवं पूण्य समाप्ति के बाद रमणीयचरण–शुभाचरणवासनाश्रयी ब्राह्मण,क्षत्रिय,वैश्यादि शुभयोनियों में जन्म लेते हैं तथा कपूयचरण–पापाचरणवासनाश्रयी शूकर,कूकरादि अशुभ योनियों में जाते हैं। श्रुति कहती है पंचाग्निविद्यानुप्रसूत देवयान,धूमयान इन दोनों मार्गो में से किसी से भी अनभिज्ञ तमसावृत्त जीव अत्रैव 'जायस्व–म्रियस्व' की तीसरी गति–दंश,मच्छर,कीट,पतंगादि क्षुद्रजीव  के रुप में धरावरण में ही अनवरत जन्मते,मरते रहते है,जिसके कारण स्वर्गलोक कभी नहीं भरता। जीवों के मोक्ष,स्वर्गादि प्राप्ति सहित विभिन्न योनियों में जन्म,मरणादि की व्याख्या करनेवाला यह औपनिषदिक सिद्धान्त बहुत हद तक–मोक्ष,स्वर्ग प्राप्ति को छोड़ देनेपर वैज्ञानिक मान्यता के भी अनुरुप ठहरता है। कर्मसिद्धान्त एवं युक्तिविरुद्ध स्थापित की गयी चेतना,विज्ञान प्रवाह की क्षणभंगुरता एवं लोकमानसस्थ शरीर,आत्मा,मृत्यु,पुनर्जन्म,विश्वोत्पत्त्यादि विमर्श पर बुद्ध के अव्याकृत,अव्याकतानि–मौन से वस्तुतः जो तत्वशास्त्रीय शून्यता उत्पन्न हुई, उसकी भरपायी के रुप में महायान के शून्यवाद,विज्ञानवाद एवं सर्वास्तिवादी वैभाषिक व सौत्रान्त्रिक–स्वतन्त्र विज्ञानवाद में तत्वशास्त्र एवं तर्कशास्त्र के बौद्धन्यायगत उद्‌भव एवं विकाश की लम्बी यात्रा सामने आयी।  वस्तुतः बौद्ध सम्प्रदाय के शून्यवाद,विज्ञानवाद एवं स्वतन्त्र विज्ञानवाद के उदय एवं विकास के पूर्व बौद्धमत में सर्वाधिक प्राचीन स्थविरवाद(पाली का थेरवाद ) एवं सर्वास्तिवाद का दर्शन शताब्दियों तक ज्ञान एवं तत्व मीमांसा की दृष्टि से तमसावृत्त ही रहा। बुद्ध के मौलिक उपदेशों को त्रिपिटकादि की व्याख्यादि में संरक्षित रखने का दम्भ भरनेवाले ये दोनों ही हीनयानी मत, मनुजानुभूत 'चेतना'–प्रमाता,विज्ञानात्मा,व्यावहारिक आत्मा का  व्यवहार एवं कर्म–सिद्धान्त के विरुद्ध खण्डनकर एवं मोक्ष या निर्वाण की परम शान्तिप्रद,परमानन्दायी,सर्वोत्कृष्ट स्थिति की धनात्मक अवधारणा के विरुद्ध दिखते हैं। ये क्षणिकत्वाभिविद्ध चेतना द्वारा कृत साधानादि का विनाश–'कृतविप्रणास' और अंतिम चेतना को बिना साधना किये दीपक की अंतिम लौ की तरह उसके वासनारुपी तेल के समाप्त होने से 'बूझने' की सी उपमिति वाले 'अकृताभ्यागम'जन्य निर्वाण जैसी नकारात्मक बौद्ध धारणा के वाहक सिद्ध हुए। वास्तव में इन्होंने मनुजोत्कण्ठारुपी कण्ठ को अवरुद्धकर, मनुज अस्त्त्वि को ज्ञानाभिपुष्ट स्वात्मानुभूति से वंचित रखा। हालाँकि 'निभानम् पदम् अच्युतम्–सूत्तनिपात आदि पालि ग्रन्थ इन दोनों सम्प्रदायों के निर्वाण की इस ऋणात्मक धारणा का खण्डन करते भी दिखते हैं। आर्ष तत्व मीमांसा एवं बौद्ध तत्व मीमांसा के सूक्ष्म अवलोकन से स्पष्ट है कि अनित्यवाद–अनात्मवाद–क्षणिकवाद से परिपृक्त,अनुविद्ध सम्पूर्ण बौद्ध परम्परा में आयी तत्वमीमांसा परम तत्व–'शून्य','परिनिष्पन्न','अभूतपरिकल्प','विशुद्धविज्ञान','आलय़' आदि के रुप में  वर्णित है। यह श्रुति–शास्त्र एवं तदानुशयी सांख्य–न्याय–मीमांसा–वेदान्तादि ब्राह्मणग्रन्थों में आयी तत्व विमर्श की शब्दावलियों के समानान्तर कुछ



www.bhojpurisahityangan.com

अलग दिखनेवाली शब्दावलियों का प्रयोग करते हुए वस्तुतः उपनिषदों के परम तत्व–ब्रह्म,परमात्मा की ही क्षणिकत्वाभिविद्ध प्रच्छन्न स्वीकृति है। यह भी अभिद्रष्टव्य है कि 'मिलिन्दपन्हो' में बौद्ध संत नागसेन द्वारा राजा मिलिन्द के मनुजानुभूत स्थायी आत्मा संबंधी पृच्छाओं में रथ के नाम से विहित,संकेतित रुपक से आत्मा,व्यक्तित्व को पंचस्कन्धाशयित परमाणुओं,विचारों के प्रवाह का केवल प्रचलित संकेत मात्र कहना, सनातन परम्परा के कर्म–सिद्धान्त को अस्वीकृतकर बिना कर्ता के कर्म, कर्म को स्वचालित अवैयक्तिक नियम से होना मानना, बिना स्थायी प्रमाता,आत्मा के केवल क्षणिक विचारों का पुर्नजन्म, वैभाषिक मत में अस्तित्व के पचहत्तर अस्थायी धर्मों की कड़ी की मान्यता आदि वदतोव्याघाताभिविद्ध तो हैं ही, मनुष्य के सद्यः अनुभूत स्थायी आत्मचेतना की युक्तिविरुद्ध वाग्जालाभिबद्ध अस्वीकृति भी हैं। वस्तुतः बौद्ध संत नागसेन राजा मिलिन्द के प्रश्न, कि आपके अनुसार जब आत्मा समझे जानेवाली वस्तु चेतना प्रवाह का यदि केवल क्षणिक गठ्ठर है तो कौन चेतना कुशल कर्म करने के बाद लुप्त हो जाती है–'कृतविप्रणाश' और कौन चेतना उसका फल बिना कुछ किये प्राप्त कर लेती है–'अकृताभ्यागम', का कोई उत्तर नही दे पाते हैं। इस आपत्ति पर हीनयान का स्पष्टीकरण, कि पूर्व चेतना लुप्त होने के पहले अगली चेतना संतति को अपने कृताकृत का गठ्ठर स्थानान्तरित कर चुकी होती है और कर्म का सातत्य नही टुटता है, क्षणिकत्व की तात्विक परिकल्पना एवं नैतिक आधार पर भी संतोषजनक बिल्कुल नहीं ठहरता। क्षणिकत्व की ऐसी स्थिति में बोध,ज्ञान,विचार,प्रतिभिज्ञा का कोई संश्लेषक (synthesizer)–प्रमाता नहीं होने के कारण बंधन,बंधन–दुःख निवृत्ति हेतु कुशल कर्म,साधना और मोक्ष–निर्वाण की बात निरर्थक हो जाती है। इस तरह वैश्विक क्षणिकत्व के सिद्धान्त और घोर नानात्व (Radical pluralism) को माननेवाला बौद्ध सर्वास्तिवाद, जो अपने को बुद्ध के आर्य सत्यों एवं आष्टांगिक मार्ग के मौलिक उपदेशों का परम अनुयायी मानने का दावा करता है, वास्तव में बुद्ध के उपदेशों से प्रच्छन्नरुप से स्वयं किनारा करता हुआ ही दिखता है और दार्शनिक निकष पर हीनयानी सर्वास्तिवाद स्वव्याघातक सिद्धान्तों का बोझा ही साबित होता है। माध्यमिक–शून्यवाद के सुव्यवस्थित प्रतिपादक (systematic expounder) नागार्जुन अपने द्वन्द्वात्मक विश्लेषण में बुद्धोपदिष्ट सत्य के दो पहलुओं–1. संवृति या व्यवहार तथा 2.परमार्थ के आलोक में माध्यमिक–शून्यवाद की शून्यता व्याख्यापित करते हैं। वे तत्व को शून्य–चतुष्कोटिविनिर्मुक्त सत्य मानते हैं और उसकी शून्यता दो अर्थों में प्रस्तुत करते हैं–1.स्वभावशून्यता तथा 2.प्रपंचशून्यता। बुद्धोपदिष्ट प्रतीत्यसमुत्पाद या द्वादशनिदान के अन्तर्गत व्यावहारिक जगत सापेक्ष है,अविद्याजन्य है, सदसदनिर्वचनीयताविद्ध है, अतः परमार्थतः मिथ्या है और यही तत्व की स्वभावशून्यता है। और जब वे माध्यमिक–शून्यवाद की शून्यता की स्वभावशून्यता की बात करते हैं तो निश्चय ही वे औपनिषदिक अद्वैत वेदान्त के अन्तर्गत जगत के परमार्थतः मिथ्यात्व और सापेक्ष जगत को जागतिक सम्व्यवहार के लिए प्रदान की गयी व्यावहारिक सत्ता की ही बात करते हैं। और तब वे श्वेताश्वतर आदि उपनिषदों में निहित अद्वैतवाद की ओर संकेत करने वाली 'माया' को माया नहीं कहकर उसे संवृति–आवरण के स्तर रखते हुए उसकी सदसदनिर्वचनीयता को महायानसूत्र एवं अपने ग्रन्थ प्रज्ञापारमितासूत्र या माध्यमिककारिका के द्वन्द्वात्मक तर्कों द्वारा स्पष्ट कर रहे होते हैं। शून्यता के दुसरे पहलू में जब वे तत्व को प्रपंचशून्य कहते हैं तो दार्शनिक जगत में शून्यवाद की भ्रान्तधारणा–सर्ववैनाशिकत्व का जड़ोन्मूलन करते हुए शून्यता को वे वह प्रपंचशून्य सत्य कहते हैं, जहाँ सभी प्रकार के जागतिक नानात्व समाप्त हो जाते हैं,जागतिक सभी संशय नष्ट हो जाते हैं। और यही तो असंदिग्ध रुप से बुद्ध से पूर्व अस्तित्ववाली बृहदारण्यक,कठोपनिषद एवं मुण्डकोपनिषद् में आयीं श्रुतियाँ जीव,जगत एवं ब्रह्म की तत्वमीमांसा के प्रकरण में कहती हैं–'...नेह नानास्ति किंचन..','भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः..'। इस प्रसंग में उपनिषदों की तत्वमीमांसा एवं ज्ञानमीमांसा की गहन गवेषणा,विश्लेषण एवं तपःपूत भूमि के बाद अस्तित्व में आये महात्मा बुद्ध के ज्ञानोपरांत उनके द्वारा दृष्ट आर्यसत्यों एवं तदानुशयी ई0पू0 तीसरी शताब्दी में त्रिपिटकाद्यानुगत विचारधारा में लंकावतारसूत्र, अश्वघोष,मैत्रेयनाथ,उनके शिष्य असंग एवं द्वितीय बुद्ध की उपाधि से महिमान्वित उनके अनुज वसुबन्धु द्वारा उपबृहिंत तथा सुस्थापित योगाचार–विज्ञानवाद में आये ज्ञान–तत्व विमर्श ध्यातव्य है। महामति असंग स्वप्रणीत महायानसम्परिग्रह–शास्त्र में योगाचार सम्प्रदाय के वैशिष्ट्यान्तर्गत जिस 'आलय' को वस्तुनिष्ठ विश्व सहित वैयक्तिक अहं का केवल प्रकटीकरण, जिस 'आलयविज्ञान' की सभी भूतजात में अनुस्यूतत्व या व्याप्ति, व्यक्ति–वस्तुपरक द्वैत का विशुद्ध चैतन्य में विलय की तात्विक आवश्यकता, संसार (बंधन) एवं निर्वाण(मोक्ष) में परमार्थ की दृष्टि से अभेद या उनका अनस्तित्व, समत्व



www.bhojpurisahityangan.com

प्राप्तकर एवं नानात्व को छोड़कर निवार्ण की इहैव व अधुनैव प्राप्तव्यता तथा सत्य के विशुद्ध अस्तित्व एवं विशुद्ध चैतन्यता व संसार की दृष्टि से उसका निर्माणकायत्व व निर्वाण की दृष्टि से उसका संभोगकायत्व आदि की बात करते हैं, तो उनके बीज उपनिषद आदि आर्ष ग्रन्थों में यत्र तत्र भरे पड़े हैं। असंग जिसे आलय एवं आलय विज्ञान कहते हैं वह वस्तुतः उपनिषदों का 'वैश्विक चित्त,विज्ञान' व विज्ञानमय कोष है। ''विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जाययन्ते। विज्ञानेन जातानि जीवन्ति। विज्ञानं प्रत्यभिसंविशन्तीति।...विज्ञान को ब्रह्म जाना। क्योंकि निश्चय ही विज्ञान से ही ये सभी प्राणी उत्पन्न होते हैं,उत्पन्न होकर विज्ञान से ही जीवित रहते हैं तथा मरकर विज्ञान में ही समा जाते हैं।''–तैत्तिरीयोपनिषद् 3–5–1 ।

पूर्व में सर्वास्तिवादी–सौत्रान्तिक रहे वसुबन्धु ने अपने बौद्धन्याय ग्रन्थ अभिधर्मकोष में पंचविध धर्म–वस्तु,विषय,अर्थ,पदार्थ तथा प्रमेय की सत्ता का भूत,वर्तमान एवं भविष्य में अस्तित्व स्वीकार करते हुए लिखा है–'तदस्तिवदात् सर्वास्तिवादी मतः'। अपने अग्रज असंग से विज्ञानवाद सम्प्रदाय में आने के बाद वसुबन्धु ने स्वप्रणीत ग्रन्थ 'विज्ञप्तिमात्र–सिद्धि' की विंशतिका में अपने विरोधियों के तर्को को पराभूत कर सिद्ध किया है कि सत्य विशुद्ध चैतन्य (pure concciousness) है एवं बाह्य वस्तुएँ विज्ञानबाह्य नहीं, बल्कि व्यक्तिनिष्ठ एवं वस्तुनिष्ठ सत्ता के रुप में विज्ञान ही अपने को प्रकट करता है। चैतन्य अपने ही बीज से उत्नन्न होकर बाह्य वस्तु के रुप में प्रकट (manifest)होता है। विशुद्ध चैतन्य बुद्धि से वस्तु की तरह प्रत्यक्षीभूत नही होता है, बल्कि यह वह आध्यात्मिक अपरोक्षानुभूति है जिसमें व्यक्ति और वस्तु का द्वैत मिट जाता है। वसुबन्धु का विज्ञानवाद उनकी 'त्रिंशिका' में चरम स्वरुप को प्राप्त करता है। वे कहते हैं–विशुद्ध चैतन्य या विज्ञप्तिमात्ररुपी सत्य अपनी स्वगत शक्तियों से तीन रुपों में परिवर्धित होता है। प्रथमतः यह आलय विज्ञान या विपाक के रुप मे प्रकट होता है। आलयविज्ञान चैतन्य का वह निधान है जिसमें सांसारिक सभी वस्तुओं के बीज संचित रहते हैं। पुनः यह वैश्विक चैतन्य आगे दो रुपों–1.वैयक्तिक अहं(क्लिष्ट मनोविज्ञान–जीवात्मा) और 2.विभिन्न मानसिक प्रकल्प और तथाकथित बाह्य वस्तुओं (विषय–विज्ञप्ति)के रुप में अपने को प्रकट करता है,जबकि इन सभी का स्थायी आधार विशुद्ध चैतन्य तत्वतः स्वयं अपरिवर्तित रहता है। ध्यातव्य है कि 'लंकावतार' का आलयविज्ञान जो तथागतगर्भ या विशुद्ध चित्त है,वह वसुबन्धु के शब्दों में 'विज्ञप्तिमात्र' है। हाँ वसुबन्धु का आलयविज्ञान विशुद्ध चैतन्य का दृश्य,अस्थायी (phenomenal) का प्रकटीकरण(manifestestation) है। यह नदी की धारा के समान सतत परिवर्तनशील है। चतुर्विध विकृति–स्वधारणा या स्वभाव,स्वभ्रम,स्वगौरव तथा स्वप्रीति से विद्ध 'आलयाश्रित' प्रमाता या जीवात्मा–क्लिष्ट मनोविज्ञान है। तत्संबंधित कुशल,अकुशल,क्लेश एवं उपक्लेशादि के रुप में षडविधविज्ञान सहित कथित बाह्य वस्तुजात–विषय विज्ञान, जिसका 'आलय' से सबंध क्रमसः 'समुद्र' से उसकी 'लहरों. के समान होता है, सहित यह क्लिष्ट मनोविज्ञान अध्यात्मिक पराभूमि में विशुद्ध चैतन्य की अपरोक्षानुभूति होते ही बुद्धि की सभी कोटियों का अतिक्रमण कर आलय,विज्ञप्तिमात्र में एकाकार हो जाता है। त्रिंशिका की टीका में बौद्ध विद्वान स्थिरमति का कहना है कि वसुबन्धु ने त्रिंशिका ग्रन्थ में पुद्गल–जीवात्मा या क्लिष्ट–मनोविज्ञान तथा वस्तुओं की तात्विक असत्यता क्रमसः पुद्गल–नैरात्म्य तथा धर्म–नैरात्म्य की तर्काभिपुष्ट सिद्धि द्वारा स्थापित की है। इसके अतिरिक्त वसुबन्धु का इस ग्रन्थ के पीछे उद्देश्य दो प्रकार की अविद्याओं–व्यक्तिगत अस्तित्व की सत्यता की असत्य धारणा से समुत्पन्न–क्लेशावरण तथा बाह्य वस्तुओं को सत्य मानने की असत्य धारणा से समुत्पन्न–ज्ञेयावरण, का भी युक्तियुक्त खण्डन है। योगाचार–विज्ञानवाद में विज्ञान के दो भेद हैं–1.प्रवृत्ति विज्ञान तथा 2.आलय विज्ञान। प्रवृत्तिविज्ञान व्यक्तिगत विज्ञान है जो क्षणिकत्वाभिविद्ध होने से दृश्य (Phenomenal) व अनित्य होता है। आलय विज्ञान प्रवृत्ति विज्ञान का आधार एवं स्रोत होता है। लंकावतार आलय विज्ञान को नित्य एवं कूटस्थ मानता है। विचित्र बात यह है कि कि विज्ञानवाद ज्ञेय–सांसारिक विषय की तरह ज्ञाता,प्रमाता,सम्प्रसाद या अनुभवकर्ता व्यावहारिक आत्मा–अहं,देही की नित्य सत्ता को अस्वीकार करता है,असद् मानता है, जबकि श्रीमद्भगवद् गीता में 'देही नित्यमध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत' अर्थात देही या जीवात्मा सद है,अविनाशी है,केवल उनका शरीर नाशवान है। ध्यातव्य है कि पाश्चात्य दार्शनिक बर्कले अपने अनुभववाद(Subjective Idealism ) मे जड़वाद, वस्तुवाद (Objectivism) का योगाचार–विज्ञानवाद की तरह घोर खण्डन करते हैं, परन्तु वे अनुभवकर्ता आत्मा और उसके विज्ञान को नित्य मानते हुए वस्तुओं को विज्ञानबाह्य नहीं मानकर उन्हें विज्ञानज प्रतीति मानते है। सत्य है–आत्मा, जिससे परमात्मा ईश्वर भी लक्षित है, के बाहर जड़



www.bhojpurisahityangan.com

वस्तु की कोई सत्ता नही है। परन्तु चरम क्षणिकत्वाग्रही बौद्ध विज्ञानवाद तो सांसारिक वस्तुओं के विज्ञानबाह्य परम अनस्तित्व (Ultimate unreality) सहित अनुभवकर्ता एवं उसके विज्ञान तक को क्षणिकत्वानुविद्ध मानते हुए उसकी सत्ता को भी असद् मानता है, जो विज्ञानवाद के त्रिस्वभाव एवं अभूतपरिकल्प की विवेचना के अन्तर्गत सुस्पष्ट है। शून्यवाद का 'परमार्थ' विज्ञानवाद में 'परिनिष्पन्न' है और शून्यवाद की 'संवृति' के विज्ञानवाद में दो भेद हैं–1.परतन्त्र तथा 2. परिकल्पित। लंकावतार सूत्र परतन्त्र–जीवात्मा को सापेक्ष(Relative) तथा परिकल्पित को वन्ध्यापुत्र के समान काल्पनिक कहता है। इस त्रिस्वभाव–परिनिष्पन्न,परतन्त्र तथा परिकल्पित में परिनिष्पन्न आर्ष ग्रन्थों–उपनिषद्–गीता–ब्रह्मसूत्र(प्रस्थानत्रयी) का कमसः ब्रह्म,जीवात्मा तथा जड़ जगत कहा जा सकता है। अब शून्यवाद में चतुष्कोटिविनिर्मुक्त शून्य की शून्यता के निखिल निषेधात्मक अथवा सर्ववैनाशिक होने की सामान्य गलतफहमी से बचने के लिए विज्ञानवाद 'अभूतपरिकल्प' की विवेचना करता है। जैसे शून्यवाद में जब सत्य को प्रपंचशून्य या निरपेक्ष(Absolute) कहा जातां है तो उसका अभिप्राय उसकी प्रपंचशून्यता है, अर्थात सभी नानात्व रहित स्वयंसिद्ध निरपेक्ष तत्व और जब शून्य को स्वभावशून्य कहा जाता है तो वहाँ शून्य का अभिप्राय स्वतन्त्र अस्तित्व रहित सापेक्ष जगत,दृश्य,क्षणभंगुर संसार की शून्यता,स्वभावशून्यता है। विज्ञानवाद के 'अभूतपरिकल्प' का निरपेक्ष में आरोप (Apply) करने पर 'अभूतपरिकल्प' का अभिप्राय है–'अभूतस्य परिकल्पो यस्मिन् सः' अर्थात वह परात्पर सत्य–निरपेक्ष सत्ता जो सम्पूर्ण प्रक्षिप्त दृश्य–क्षणिक,असत्य जगत(Phenomenal world) की सत्य प्रतीति का आधार है। वहीं अभूतपरिकल्प का संसार में आरोप(Apply) का अभिप्राय है–'अभूतस्य परिकल्पो यस्मात् सः' अर्थात प्रमाता,अनुभवकर्ता सहित नाशवान जगत, जो स्वरचनाधर्मी चैतन्य–'आलय' की अभिव्यक्ति है। विज्ञानवाद में 'अभूतपरिकल्प' सामान्यतः आलय विज्ञान के लिए प्रयुक्त होता है जो रचनाधर्मी चैतन्य है और यही दृश्य जगत की सभी घटनाओं,कार्यकलापादि का समर्थनकारी व प्रादुर्भावी सद्यः आश्रय या आधार भूमि है। वस्तुतः आलयविज्ञान सृजनकारी गतिशील चैतन्य है जो अपनी अनादि परा–अविद्या(beginningless tramscendetal Ignorence) द्वारा स्वयं को ज्ञाता–ज्ञेय के द्वैत (Subject&Object duality) के रुप में प्रकट कर लेता है, जो अपनी सामग्री को लेकर विकल्प,परतन्त्र और सापेक्ष तथा अपने स्वयं के तत्व (Essence) को लेकर निरपेक्ष (Absolute) कहा गया है। यह निरपेक्ष दृश्य जगत को प्रक्षिप्त या उपस्थित करने में स्वयं को सीधे तौर पर तत्वतः अस्पृष्ट रखनेवाला एक ही साथ दृश्य जगत में सद्यः अन्तर्निहित और उनसे परे(Trascendental) भी है और इस रुप मे यह 'त्रिस्वभाव' का 'परिनिष्पन्न' है। परन्तु यही निरपेक्ष अपने को परोक्षरुप से ज्ञाता–ज्ञेय (Subject&Object duality) रुपी द्वैतात्मक दृश्य जगत में प्रक्षिप्त होने देने की छूट देने के कारण 'त्रिस्वभाव' का 'परतन्त्र'–क्लिष्ट मनोविज्ञान है, यानि आलय के रुप में दृश्य जगत का सापेक्ष सत्य है। वहीं दुसरी तरफ स्वतन्त्र विज्ञानवाद विज्ञानवाद की तत्वमीमांसा–परम तत्व की विशुद्ध चैतन्यता (Absolute's pure consciousness ) को स्वीकार करते हुए उसकी पुष्टि अपने विशिष्ट सम्प्रदायागत ज्ञान मीमांसा के तहत स्वतन्त्र तार्किक विवेचनाओं के साथ करता है। विज्ञानवादी वसुबन्धु के शिष्य व स्वतन्त्र विज्ञानवाद के प्रवर्तक दिन्नाग मध्यकाल में भारतीय न्यायशास्त्र के उसी तरह प्रवर्तक थे जैसे गौतम प्राचीन न्यायशास्त्र के और गंगेश आधुनिक न्यायशास्त्र के। अस्तु! दिन्नाग ने जिस स्वतन्त्र विज्ञानवाद के रुप में बौद्ध न्यायशास्त्र की नींव रखी, वह एक साथ तर्कशास्त्र,ज्ञानमीमांसा तथा तत्वमीमांसा है। जहाँ विज्ञानवाद क्षणभंगवाद को केवल दृश्य जगत तक सीमित रखता है और सत्य को स्थायी चैतन्य घोषित करता है, वहीं विज्ञानवाद की यह तार्किक शाखा सत्य को विशुद्ध विज्ञान या चैतन्य स्वीकार करते हुए इस विशुद्ध विज्ञान को भी वैश्विक क्षणिकत्व से आच्छादित मानती है। दिन्नाग ने वसुबन्धु की तत्वमीमांसा–निरपेक्ष विज्ञानवाद को स्वीकार तो किया है, परन्तु वास्तव में उन्होंने अपने तीक्ष्ण तर्क–युक्ति एवं ज्ञानमीमांसा की पैनी धार से क्षणभंगवाद के सिद्धान्त को पुनर्जीवित कर निरपेक्ष विज्ञानवाद को कान्ट की तरह आलोचनात्मक विज्ञानवाद के रुप में प्रस्तुत करने में सफलता पायी हैं। जब ब्राह्मण मीमांसक एवं नैयायिक बौद्ध विद्वानों की तर्क पद्धति पर भारी पड़ने लगे थे उस समय दिन्नाग ने गौतम के 'न्यायसूत्र' और वात्स्यायन के 'न्यायभाष्य' पर भयंकर प्रहार किया, जिसके फलस्वरुप ब्राह्मण न्यायशस्त्री उद्योतकर ने अपने अपनी न्याय–वार्तिक में दिन्नाग के सभी आक्षेपों का, अपनी तर्क चातुरी से, खण्डन कर न्यायशास्त्र की प्रतिष्ठा को बहाल करने में महनीय भूमिका निभायी। बाद में धर्मकीर्ति ने जब अपनी प्रमाण–वार्तिक में उद्योतकर के सभी तर्क एवं युक्तियों को बड़ी बेरहमी से रौंद दिया तब लम्बे अन्तराल के बाद महान अद्वैत वेदान्ती वाचस्पति मिश्र ने अपनी



www.bhojpurisahityangan.com

न्याय–वार्तिक–तात्पर्य–टीका में उद्योतकर के तर्क–चातुर्य को बहाल करते हुए पारम्परिक न्यायशास्त्र की गरिमा स्थापित की। अद्वैत–प्रवर्तक शंकराचार्य के बाद के प्रबल अद्वैतवादी कुमारिल बौद्ध न्यायशास्त्र की सद्यः अवगम्यता अनुभूत करने के लिए कुछ वर्ष बौद्ध भिक्षु रहे और उसके उपरान्त ब्राह्मण धर्म में लौटकर अपने विशाल वार्तिक ग्रन्थ में बौद्ध न्यायशास्त्र को धूल–धूसरितकर पराभूत किया तथा मीमांसा की गरिमा को पुर्नस्थापित किया। इन नैयायिकों एवं मीमांसकों की प्रतिक्रिया में बौद्ध विद्वान शान्तरक्षित ने तत्वसंग्रह तथा कमलशील ने अपनी कृति 'पंजिका' में उक्त नैयायिकों तथा मीमांसकों पर प्रबल प्रहार किया, परन्तु तब तक भारतीय राजनीति तथा धर्म के ई0 सातवीं शदी उत्तरार्ध तक करवट बदलने के कारण ये बौद्ध विद्वान ब्राह्मण न्याय एवं मीमांसा को और अधिक प्रभावित करने में असफल रहे एवं इस तरह स्वतन्त्र विज्ञानवाद की महान दार्शनिक परम्परा का उसके अंतिम महान बौद्ध नैयायिक कमलशील के तिब्बत प्रवास के साथ अंत हो गया। परन्तु तब तक ब्राह्मण एवं बौद्ध विद्वानों की उक्त लम्बी क्रिया–प्रतिक्रिया में भारतीय दर्शन खूब फला, फूला जिसके फलस्वरुप भारतीय दार्शनिक क्षेत्र आज ब्राह्मण एवं बौद्ध विद्वानों के प्रचुर ग्रन्थों से नितरां शोभायमान है। स्वतन्त्र विज्ञानवाद में क्षणिकत्व अपनी जिस तार्किक उच्चाई तक पहुँचा वहाँ विज्ञान सातत्य के संश्लेषक–जीवात्मा को उसके तर्कप्रसूत गहन क्षणभंगुरता ने ही निगल लिया। स्वतन्त्र विज्ञानवादियों ने एक एक कर न्याय–वैशेषिक,सांख्य–प्रकृति, ईश्वर,ब्रह्म,आत्मा एवं बाह्य वस्तुवाद का अपने महाविनासकारी क्षणभंगवाद से ऐसा खण्डन किया जिसमें विशुद्धचैतन्य की सत्यता के निराकारता का सिद्धान्त अक्षुण्ण तो रहा, परन्तु क्षणिकत्व की चरम व्याप्ति ने इस चरम विज्ञानवाद में ज्ञान एवं तत्व–मीमासा' की स्थापनाओं को स्थापित करनेवाले विज्ञाता और उपनिषदों के व्यावहारिक विज्ञानात्मा, जिसे बृहदारण्यकोनिषद्–'..नहि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वात्..'बृ04–3–23 से 4–3–30 अर्थात द्रष्टा के अविनाशित्व के कारण उसके शरीर की मृत्यु के बाद भी उसकी देखने,सुनने,सूंघने,मनन आदि करने की शक्ति का विनाश नहीं होना मानता है, का ही विनास कर डाला। जहाँ व्यावहारिक चैतन्य क्षणिकत्व से नष्ट हो जाता हो वहाँ विशुद्ध चैतन्य या परम विज्ञान–परम तत्व की अनुभूति कौन करता है? क्षणिकत्व की आंधी में यदि 'व्यवहार एवं परमार्थ का व्यावहारिक द्वैत विलीन हो जाय तो परमार्थ–स्वतन्त्र विज्ञानवाद में सत्य का विशुद्ध चैतन्य–विज्ञानवाद का परिनिष्पन्न, विज्ञाता के बिना तर्क–मंजूषा में शोभायमान 'केवल शाब्दिक विज्ञप्तिमात्र' क्या नहीं हो जाता है? स्वतन्त्र विज्ञानवाद की तर्कोदधि के क्षणिकत्वप्रसूत विनाशोर्मि में व्यवहार तथा परमार्थ का द्वैत ऐसा डूबा कि प्रज्ञा क्षणिकत्व में विलीन हो गयी तथा उसका धर्ता,विज्ञप्तियों का संश्लेषणकर्ता,विशुद्ध ज्ञाता विशुद्ध विज्ञान या चैतन्य के परम सत्य होने के चरमानुभव के पूर्व उसके वैराट्य में विलीन हो जाता हुआ दिखता है। अन्ततः शून्यवाद,विज्ञानवाद एवं स्वतन्त्र विज्ञानवाद में औपनिषदिक–वेदान्त के निहितार्थों की व्याप्ति एवं प्रभाव का विश्लेषण इन बौद्ध मतों के वास्तविक विज्ञप्ति एवं तथ्य को जानने के लिए आवश्यक है। वास्तव में शून्यवाद वेदान्त की तरह व्यवहार तथा परमार्थ के व्यावहारिक द्वैत की अवहेलना नहीं करता है और 'शून्य' को दो अर्थों में–वेदान्त के माया की तरह सदसदनिवर्चनीय–मिथ्या अर्थात स्वभावशून्य–पारमार्थिक सत्यताविहीन सापेक्ष तथा वेदान्त के ब्रह्म की तरह सभी प्रकार की द्वैतोपलब्धि,संवृति,माया का आधार रहते हुए भी तत्वतः 'प्रपंचशून्य'–सभी प्रकार के द्वैत,नानात्व,प्रपंच से रहित मानता है। उधर माण्डूक्योपनिषद् पर शंकराचार्य के दादागुरु गौडपादाचार्य कृत गौडपादीय कारिका में जीव,ब्रह्म,माया के निरुपण एवं द्वन्द्वात्मक तर्कों में तथा बौद्ध शून्यवाद में इतने सादृश्य हैं कि अद्वैत वेदान्त पर आक्षेप लगानेवाले वैष्णव वेदान्ती गौडपादाचार्य एवं अद्वैत वेदान्त को व्यवस्थित दर्शन के रुप में स्थापित करनेवाले उनके प्रशिष्य शंकराचार्य को प्रछन्न बौद्ध वैनासिक तक कह डाले हैं। लेकिन वास्तविक तथ्य यह है कि स्वयं बुद्ध एवं नागार्जुन कई जगह उपनिषदों के ब्रह्म,माया,जगत के निहितार्थों से अत्यधिक प्रभावित दिखते हैं। माध्यमिकों की संवृति वेदान्त के व्यवहार,माया तथा शून्य या निरपेक्ष सत्य, वेदान्त के ब्रह्म को परिलक्षित करता है। वहीं विज्ञानवाद के त्रिस्वभाव के अन्तर्गत 'परिनिष्पन्न' अद्वैत वेदान्त का परमार्थ, निर्गुणब्रह्म, आलय–अद्वैत वेदान्त का मायोपहति ब्रह्म–माया में प्रतिबिम्बित ईश्वर, परतन्त्र या क्लिष्टमनोविज्ञान वेदान्त का जीव, परिकल्पित या विज्ञप्ति–विषय–वस्तु, वेदान्त की माया को परिलक्षित करता प्रतीत होता है। यहाँ यह कहना गलत नहीं होगा कि महात्मा बुद्ध ने ब्राह्मण धर्म की प्रतिक्रिया में कर्म–उपासनागत तत्वों की अवहेलना तो की, परन्तु औपनिषदिक तत्व चिंतन के मूल तत्वों को समाहित करते हुए अपने जिन सरल उपदेशों को जनार्त्तनिवृत्ति हेतु जन समुदाय को दिया वह कालक्रमतः ब्राह्मण धर्म पोषित न्याय एवं मीमांसा के क्लिष्ट



www.bhojpurisahityangan.com

तर्क–जाल में ऐसा उलझ गया कि तीव्र क्षणिकत्वाग्रह एवं पुद्गल–धर्म नैरात्म्य को छोड़ दें तो सातवीं–आठवीं शती आते आते ब्राह्मणर्धानुपोषित न्याय,मीमांसा और तत्व दर्शन से उसकी तत्वतः अलग पहचान कठिन हो गयी। हीनयान महात्मा बुद्ध के ईश्वर निषेध को पकड़कर उन्हें 'अर्हत्' के स्तर से उपर भगवान मानने से तो बचा रहा, परन्तु ऐसा कर वह संकीर्ण मत के रुप में महायानियों का कोपभाजन बना और ये महायानी बौद्ध तर्क–न्याय–तत्वदर्शन की पराकाष्ठा पर पहुँचकर भी महात्मा बुद्ध को भगवान के आसन पर प्रतिष्ठितकर अन्ततः पुनः ब्राह्मण धर्म के समान ईश्वर की उपासना में अपने को महिमान्वित समझने लगे।

अस्तु! तत्वचिंतन के इस विमर्श,विश्लेषण से मेरा आशय किन्हीं के तत्वचिंतन,धर्मभूत मताभिगठन एवं तत्तत् आस्था को अपकर्षित, निरादृत या किंचित् भी आहत करने का नहीं है। प्रत्युत मेरा अभिप्राय परम तत्व या परम सत्य के तात्विक स्वरुप के स्वस्थ विमर्शों के साथ साथ सद्गुरु की स्नेहछाया में सुनिश्चित परमतत्व की ज्ञानानुपुष्ट वह उपासना है, जिसमें आर्षबुद्ध्यानुपुष्ट विधिमुख–निषेधमुख सभी निवर्चनों में कुछ हद तक समाते समाते वह परम तत्व या परम सत्य–ब्रह्म या परमात्मा अन्ततः उन सभी से परे अपनी महिमा में विराजते हुए मानवहृदय की सभी ग्रन्थियों को विदीर्ण कर उसकी सीमितता–अणुत्व को अपनी अगाध पराचेतना में विभुवत् एवं आत्मसात कर लेता है,स्वसच्चिदानन्द में निमग्न कर देता है–'भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसशयाः। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।।–2–2–8।। अर्थात उस परमतत्व–ब्रह्म का साक्षात्कार करनेवाले की सभी हृदयग्रन्थियाँ टूट जाती हैं,सारे संशय नष्ट हो जाते हैं और सभी कर्म क्षीण यानि कर्मफलोत्पत्ति–भव उत्पन्न करने की क्षमता से रहित हो जाते हैं। आधुनिक तत्वचिन्तन–ज्ञान–मीमांसा एवं तत्व–मीमांसा की परम्परा में व्यक्तिगतरुप से मैं अपने को, आधुनिक पाश्चात्य दार्शनिक निकोलस,ब्रूनो, देकार्त,स्पिनोजा,लाइबनिज,लॉक के बुद्धिवाद–अनुभववाद,बर्कले के विज्ञानानुभववाद तथा ह्यूम के संदेहवाद,अज्ञेयवाद के पश्चात् कान्ट के समन्वयवादी आलोचनात्मक विज्ञानवाद की ज्ञानमीमांसा–तत्वमीमांसा से परिष्कृत–परिमार्जित एवं फिक्टे–शोलिंग से हेगेल तक परिशोधित,परिवर्धित द्वन्द्वमूलक समन्वयात्मक निरपेक्ष विज्ञानवाद से आगे, आर्षपरम्परा में बड़ी सहृदयतापूर्वक ज्ञानमीमांसा–तत्वमीमांसापरक विशाल क्या, असीम उदारता के साथ वेदान्त के मनीषियों–परमर्षियों की विधिमुख एवं निषेधमुख से विमर्शित तत्वचिंतनधारा में अवगाहित,अनुप्रपूत अनुभव करता हुआ उपर्युक्त ज्ञान,तत्व विमर्श में केवल अपनी ज्ञानानुरागिनि सदाशयता मात्र व्यक्त कर रहा हूँ। और ''यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति। सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते।।–ईशावस्योप0–6।। तथा ''सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि। ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः।।–गीता–6:29।। आदि श्रुति–शास्त्रों में प्रशस्त एक साथ उक्त निवर्चनानुगत एवं उनसे परे एक ही निरपेक्षतत्व ब्रह्म के व्यष्टिगत एवं समष्टिगत सर्वाभिव्यक्ति में अनुस्यूत तात्विक एकत्व का अपने को प्रशंसक एवं ध्वजवाहक मानता हुआ भी क्या मैं स्वस्थ तर्कालोचना में सर्वदा निन्दित विजुगुप्सा, निन्दापवाद, ऐकान्तिकता,एककोणीयता एवं अतिवदन का अनुशरण क्या, कल्पना मात्र भी कर सकता हूँ? अस्तु! हमारा आर्ष तत्वचिंतन ऋषिमानसदृष्ट मन्त्रों में, जहाँ तक हुआ, उन उन तत्वलक्षणों का विधिमुख से संकेत करने एवं उसके विमर्शणीयता का–शास्त्र,पुराणादि सहित व्यक्तिपरक चिंतन हेतु तक का भी सिंहद्वार खोलते हुए अन्ततः निषेधमुख निर्वचन से उसे 'नेति,नेति' कहकर मनुज के परमात्मविषयक पूर्णाभिव्यक्ति या निरपेक्ष निर्वचन की इयत्ता को सहर्ष स्वीकार कर लेता है। इस प्रक्रम–प्रकरण में मेरा तो यह भी मानना है कि परमर्षियों द्वारा श्रुति–मन्त्रों में परमतत्व के इन्हीं विमर्शों का सम्बल लेकर हमारे आर्ष मनीषानुयायी, परमतत्व के मनुजोद्भूत एकाधिकृत अविमर्शणीय संदेशवाहकत्व–दौत्यादि एवं तदनुसार मानुषी उद्घोष तथा तत्व के एककोणीय मताभिगठन के उत्स एवं विकास की किसी भी सम्भावना पर, वर्षो पूर्व पूर्ण विराम लगा चुके दिखते है।

अब इस प्रबंधकाव्य के नायक श्रीराधाकृष्ण के तत्वचिंतन में भागवतीय विमर्श की बात कुछ आगे बढ़ाने पर हम पाते हैं कि विष्णु के नररूप में उपास्य नारायण को व्यासजी हम सभी नर के लिए स्वप्रणीत अप्रतिम ग्रन्थ श्रीमद्भागवतमहापुराण में यथाप्रसंग उपास्य,आराधनीय,प्रविष्टव्य,अनुयुज्य एवं अनुविलीनास्पद –मोक्षप्रद दिखाते हैं। इस प्रसंग में श्रुति–शास्त्रानुमोदित यह तथ्य विमर्शणीय है कि ब्रह्म अथवा महाविष्णु के व्यापक स्वरूप में रूद्ररूपी संहारक रूप भी है, जो अनन्तव्यापक सत्ता के अन्तर्गत स्वाभिन्ननिमित्तोपादान रूप से स्वसृजित लोकों,पिण्डों आदि का, वैश्विक किम्वा तात्विक अनिवार्यता के तहत, ससमय संहार करते रहता है। वहीं उसका पालक,रक्षक स्वरूप



www.bhojpurisahityangan.com

समष्टि में उनकी भरपायी नये लोकों,पिण्डों आदि का निर्माण कर सतत करते रहता है। यह औपनिषदिक तत्वचिंतन सहित वैज्ञानिक चिंतन में भी स्वीकृत सत्य है। सत्तावाले की भौतिक सत्ता भी स्थायीरूप से कभी नष्ट नहीं होती। सृष्टि–निर्माण,संहार की उसकी व्यवस्था में वह सदा ऐसी ही बनी रहती है जो श्रीमद्भागवत के प्रथम खण्ड तृतीय स्कन्ध के दसवें अध्याय के श्लोक संख्या 13 में श्रीव्यासजी द्वारा इस प्रकार उल्लसित हैः–'' यथेदानीं तथाग्रे च पश्चादप्येतदीदृशम्। सर्गो नवविधस्तस्य प्राकृतो वैकृतस्तु यः।। अर्थात ''यह जगत जैसा अब है, वैसा ही पहले था और भविष्य में भी वैसा ही रहेगा। इसकी सृष्टि नौ प्रकार की होती है तथा प्राकृत–वैकृत भेद से एक दशवीं सृष्टि और भी है।'' गीता के आठवें अध्याय में भी तो परम सत्यस्वरुप श्रीकृष्ण चराचर के बार बार अव्यक्त से व्यक्त और व्यक्त से अव्यक्त होने की बात '......भूत्वा भूत्वा प्रलीयते ' कहकर करते हैं। परन्तु मनुष्य या नर को तो ब्रह्म का वही स्वरूप प्रिय,अनुरंजक तथा अभीष्ट होता है जिसमे पालक एवं आतताईयों,अत्याचारियों आदि अतिवादियों,हिंसक नरपिशाचों से रक्षा के साथ साथ उसमें लोकमंगल करने,लोकमानस को स्व–सौशील्य,औदार्य आदि शुभगुणों के गुणानुवाद से लोकरंजन,मंगलाशा व आर्त्तजनोद्धार करने का भाव उसके देवत्व से भी बड़ा हो। व्यासजी ने ब्रह्म के इस स्वरूपाभिव्यक्ति को वैदिक विष्णु के उत्तरवैदिक–महाभारत काल में सर्वस्तुत,सर्वोपास्य नारायण में अनुभव किया एवं इन्हीं नारायण को भागवतीय मंगलाचरण में परमसत्य कहकर उनके ध्यान,उपासना को मानव का परम कर्त्तव्य बताया। इन्हीं विष्णुरुप व्यासजी के तपःपूण्यानुप्राणित लेखनी से अनुप्रसूत श्रीमद्भागवत में वर्णित है कि उन नारायण के मनोहर एवं सौम्य विग्रह से सम्पूर्ण लोकों और जीवों का प्रादुर्भावकारी जो दिव्य कमलप्रसून प्रकट हुआ उसी पर लोक पितामह ब्रह्माजी अपने को स्थित पाये। भगवान नारायण की कृपा एवं संकेत से ब्रह्माजी ने तपस्या के पश्चात् भगवान के दिव्य वैकुण्ठलोक में लक्ष्मीजी से सुसेवित समस्त भक्तों के रक्षक,लक्ष्मीपति,यज्ञपति एवं विश्वपति स्वरूप उन भगवान को देखा एवं उनसे प्राप्त आदेशानुसार सृष्टिकर्म में प्रवृत्त हुए। वेदगर्भ ब्रह्माजी ने पहले कल्प में जैसी सृष्टि थी,उसी रूप में इस विश्व की रचना की–'सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत'–ऋग्वेद–10–190–3'। निगमज्ञों–वेदज्ञों के अभिमतानुसार भगवान ने सृष्टि–संविधानक वेदों में सूक्ष्मतः अनादि काल से कर रखा है, जिसका संकेत ऋग्वेदादि आर्ष ग्रन्थों के मन्त्र–श्लोकादि में जगह जगह दृष्टिगत होता है। ब्रह्माजी ने दस लक्षणोंवाले श्रीमद्भागवत महापुराण, जिसका उपदेश स्वयं भगवान नारायण ने उन्हें दिया था, अपने सर्वाधिक प्रिय पुत्र नारद को सुनाया। उसी भागवत को सरस्वती के तट पर परमात्मा के ध्यान में निमग्न व्यासजी को देवर्षि नारदजी ने सुनाया। ये प्रसंग मेरी रचना के छठे सर्ग में पद्यबद्ध हैं। शतपथ ब्राह्मण में पुरुष नारायण द्वारा जीवों में सर्वश्रेष्ठ होने के उद्देश्य से पुरुषमेधस्वरुप पंचरात्र या पांचरात्र यज्ञ करने का उल्लेख मिलता है–'पुरुषो ह नारायणोऽकामयत। अतितिष्ठेय ँ्सर्वाणि भूतान्यहमेवेद ँ्सर्व ँ् स्यामिति स तं पुरुषमेधं पञ्चरात्रं...'(शतपथ ब्राह्मण–13–6.1.1)। ब्राह्मण काल से लेकर महाभारत काल तक की कालावधि में भागवतधर्म का स्वरूप पूर्णतः स्थापित मिलता है। नारायणोपाख्यान में उल्लेख मिलता है कि क्षीरसागर के मध्य श्वेतद्वीप के निवासी भगवान वासुदेव की प्रेमाभिसिक्त उपासना किया करते थे। सात्वतसंहिता/पांचरात्रागम आदि में आये उल्लेख के अनुसार भगवान का जो स्वरूप पूर्वकल्प में नर–नरायण के रूप में था, वही अर्जुन एवं वासुदेव कृष्ण के रूप में इस कल्प में प्रकट हुआ। आर्षग्रन्थों में यह भी उल्लेख मिलता है कि महाभारत काल तक भगवान के नारायणस्वरूप की अनन्योपासना या गूढ़ भक्ति यादवों के एक विशेष वर्ग सात्वतों के बीच होती चली आ रही थी। इस पांचरात्र अथवा नारायणीय धर्म को सात्वतों के बीच प्रचलन के कारण इसे सात्वत धर्म भी कहा गया है। भागवत में एवं अन्यत्र भी कृष्ण को जगह जगह 'सात्वतां पतिः' या सात्वत यादवों का शिरमौर कहा गया है। इस सात्वत या नारायणीय धर्म में पल्लवित भक्ति का ज्ञानाभिषिक्त उत्कर्ष महाभारत के भीष्मपर्व में स्वयं भगवान कृष्णोदित गीता में प्राप्त होता है। गीता में भक्ति का जो स्वरूप बारहवें अध्याय में वर्णित है, उसके सम्यक् अनुशीलन से ज्ञात होता है कि भगवान ने अपने भक्तों में जिन जिन लक्षणो से युक्त भक्त तथा भक्ति को अपना प्रिय बताया है वे लक्षण ज्ञानी में भी पूर्णरूपेण स्वयमेव दिखेते हैं। यथाः–'' यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति। शुभाशुभ परित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः गीता012–।।'' ज्ञानी भी तो हर्ष या राग और द्वेष से उपर उठकर ज्ञानस्वरूप ब्रह्म में अचल रूप से स्थित रहता है। परन्तु ज्ञानी जो प्रयत्नपूर्वक, अपनी इन्द्रियों को जीत कर जिस ज्ञान में प्रतिष्ठित होता है, वह भी भगवान की दुस्तर माया से पतित हो जाने के डर के साये में, उसका फल मोक्ष भक्त को बिना चाह के ईश्वर उसके



www.bhojpurisahityangan.com

दोषरहित अनुराग या अव्यभिचारिणी भक्ति से प्रसन्न होकर उसके संचित कर्मों को सद्यः भस्मसातकर तथा क्रियमाण को भूने बीज तरह फलोत्तपत्तिविहीन करके दे देते हैं। इतना ही नहीं उसके एकमुश्त भीषणफलाभिसंधिवाले प्रारब्ध को किश्तों में बांटकर उसे बिना शिकायत के सहकर काटने का हौसला भी प्रदान करते हैं। और देहावसान की वेला में कदाचित् कौमा आदि से संज्ञाशून्यता या स्मृतिलोप होने के कारण भगवद्स्मृति में देहावसान न होने पर भी उस भक्त को स्वयं यादकर उसे ज्ञानिदुर्लभ ब्रह्मज्ञान प्रदानकर मोक्ष दे देते हैं–भगवद्रामानुजाचार्य की पृच्छा पर महात्मा कांचीपूर्णस्वामी से हस्तिगिरिपति भगवान वरदराज ने मानुषीवाणी में साक्षात् कहा–''मोक्षोपायो न्यास एव जनानां मुक्तिमिच्छताम्। मद्भक्तानां जनानां च नान्तिमस्मृतिरिष्यते।। देहावसाने भक्तानां ददामि परमं पदम्।'' 'अर्थात् मुमुक्षुओं के लिए भगवान के चरण–कमलों में शरणागति ही मुक्ति का एकमात्र उपाय है। मेरे भक्त अंतिम समय में यदि मेरा स्मरण नहीं भी कर सकें तो भी उनकी मुक्ति अवश्यम्भावी समझना। ''अन्यत्र भी भगवान ने कहा है–'अहं स्मरामि मद्भक्तं नयामि परमां गतिम् '। भगवान के भावुक भक्तों एवं गोपिकाभावभावित पराप्रेमपिपासुओं को भगवान से अनायास प्रदत्त मोक्ष के बारे में शास्त्र–पुराणगत विमर्श और जीते जी ज्ञान–भक्ति के साफल्यान्भूति प्राप्त कर चुके महापुरूषों का रहस्योद्घाटन है कि वह भक्त आनन्दातिरेक के साथ बिना प्रयत्न के भगवत्कृपा से अनायास उस दुर्लभ मोक्ष को प्राप्त करने के बाद भी उसकी समादृत उपेक्षा कर उन्हें केवल उनके चरणपंकज का मधुप रहने देने में ही भगवत्कृपा की सार्थकता समझता है। वस्तुतः भगवान की अव्यभिचारिणी भक्ति से उपबृंहित,सम्पोषित भक्त भगवान के लोकरंजक स्वरूप तथा उनके शील, ऐश्वर्य, सभी प्राणियों के प्रति समभाव, अहैतुकी करूणा आदि असंख्य शुभगुणों पर रीझकर स्वतः राग–द्वेष से उपर उठने लगता है। वह किससे घृणा करे,किससे वैर करे,किससे इर्ष्या करे और किसका अनिष्ट करे या सोचे, जबकि वह भगवत् कृपा एवं भगवान की प्रेम–भक्ति मे उनकी कृपोत्कर्षोपलब्ध महात्माओं के सत्संग–सहवास से सभी प्राणियों को भगवान का ही रुप समझने लगता है और ऐसे में वह अपने उपास्य की अप्रसन्नता कैसे ले सकता है। इतना ही नहीं, भगवान के लिए ही अहर्निश सोचना,उनकी प्रसन्नता के लिए ही जहाँतक सम्भव होता है, अपने वर्णाश्रमानुमोदित नियतकर्मो के सम्पादन के प्रयास सहित नौकरी,व्यापार आदि गार्हस्थ्यादि जीवन के सारे कर्मों को भगवान की प्रसन्नता के लिए करने के कारण वह एक साथ भक्त,कर्मयोगी एवं ज्ञानयोगी भी बनकर इन अवस्थाओं के बिना आभास के भगवान में सतत रमते रहता है। ऐसी स्थिति में जबकि उससे अपने प्रिय भगवान के अनुरंजन मात्र के लिए किये गये कर्म के अतिरिक्त काम्यकर्म सम्पादित ही नहीं होते तो क्रियमाण कर्म उसे बांध नहीं पाते, भगवान की प्रसन्नता प्राप्त होने से उनके द्वारा प्रदत्त कृपा–ज्ञानाग्नि से अनादि जन्मों के उसके संचित कर्म भी सूखे घासफूस की भाँति जलकर नष्ट हो जाते हैं और मातृगर्भ में देह के संयोग से लेकर मृत्युपर्यन्त रहने वाले सुख–दुःखादिरूप प्रारब्ध वह बिना किसी शिकायत के झेल जाता है। अर्थात भगवान द्वारा गीता में वर्णित भक्ति उसे अनायास ज्ञानी बना देती है। उपर से ज्ञानियों की प्रायः सशंकित व शुष्क दशा के भय के विपरीत भक्त भक्तिजनित आनन्द के प्रवाह में बेखुद होकर गोते लगाता है। पश्चिमी रहस्यवादी–दार्शनिकों एवं ज्ञानविदग्धों के विपरीत वह अपने आराध्य को इस लोक में ऋत् आदि लोकसुव्यवस्था के स्थापन, जनदुःखविसरण, लोकपालन एवं लोकाभिरंजन करता हुआ महसूस क्या, साक्षात् करता हुआ देखता है। यह आश्चर्य है कि नारदपाञ्चरात्र, श्रीमद्भागवत एवं अन्य श्रीवैष्णवागमोक्त परात्परब्रह्म श्रीमन्नारायण श्रीकृष्ण के पाँच स्वरुपों–पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी एवं अर्चास्वरुप में भक्तों तथा प्रपन्नों के लिय सद्यःसुलभ भगवान के अर्चाविग्रह–श्रीलक्ष्मीनारायण,श्रीसीताराम,श्रीराधाकृष्ण,श्रीलक्ष्मीनृसिंहादि की सर्वतोभावेन आराधना,उपासना करनेवाला भगवान का वह किंकर अपने भगवान को किसी भी प्रकार की इयत्ता में नहीं जकड़े रहता है। वह यह भलिभाँति जान चुका होता है कि अपने प्रिय भगवान को जितना तक जानता है, वे उतना ही नहीं हैं। रामचरतिमानस की चौपाई–'हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता' को बात बात पर कहनेवाला वह अच्छी तरह जानता है कि उसके भगवान छोटे से छोटे एवं बड़े से भी बड़े हैं–' अणोरणीयान् महतो महीयान् ''। यही तो श्रुतियाँ ब्रह्म के चिंतन में उसके स्वरूप का निरूपण करते करते उस तक मन,वाणी की पहुँच न होती देख बाद में उसे 'अथातो नेति,नेति आदेशः...नेति नेति...–छान्दोग्य,बृहदारण्य आदि उपनिषदों में कहने लगती हैं। इस निषेधमुख वर्णन में ही ब्रह्म का अनन्तस्वरूप सामने आता है और वस्तुतः यही भक्ति का सिंहद्वार है। जो अनन्त है वही आनन्द है। जो अल्प है उसमें आनन्द कहाँ। जहाँ अल्पता है,सीमितता है, वहाँ मृत्यु है। अल्प और ससीम



www.bhojpurisahityangan.com

होना मतलब छण छण परिवर्तन,विनास एवं जरा–मृत्यु आदि अनर्थो से ग्रस्त,त्रस्त और अन्ततः नाम–रुपतः विनष्ट होना। अक्षर,अनन्त,अच्युत,अविनाशी,कूटस्थ,निरपेक्ष परमात्मतत्व ब्रह्म को छोड़कर भगवान की मायारचित अनन्त ब्रह्माण्ड के सभी चराचर अस्तित्व–आब्रह्मस्थाणुपर्यन्त ससीम व अल्प हैं, अतएव कालक्रमतः परिवर्तन,विनास–मृत्यु आदि अनर्थों से ग्रस्त हैं। बस श्रुत्योक्त दहर–भूमारुप ब्रह्म तथा शास्त्र–पुराणोक्त परात्परब्रह्म श्रीकृष्ण ही असीम,अनन्त एवं निरतिशय हैं। अतः वही परमसत्य एवं परमानन्द हैं–'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म–तैत्तिरीय श्रुति। अब जिन्हें विराटता,विभुत्व,अमरता एवं निरतिशय आनन्द चहिए तो उस ज्ञानी एवं भक्त का मन तो छान्दोग्य उपनिषद् में वर्णित ब्रह्म के दहर,भूमा स्वरूप में स्थित होगा ही। भक्तों,पराप्रीत्योपासकों के लिए वह भूमा श्रीकृष्ण हैं, जिनमें वे एवं ज्ञानयोगी भी कृष्ण की प्रियतमा गोपियों की तरह कृष्ण के प्रेम,लीलादि के अनुशीलन,श्रवण,दर्शनादि नवधा भक्ति से उस प्रेमरस को अनुमित क्या, साक्षात कर उसमें अपने मन को रमाते हैं। ब्रह्म के भूमास्वरूप में अनुस्यूत प्रेमोद्भूत रस, किम्वा–'..रसो वै सः..' ज्ञानियों एवं भक्तों को अभीष्ट भी है और उन्हें अनुरंजित भी करता हैः–सनत्कुमार नारद से कहते हैंः–''यदा वै सुखं लभतेऽथ करोति नासुखं लब्ध्वा करोति सुखं त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति। ....'' छा07–22–1। अर्थात् मनुष्य को जब सुख प्राप्त होता है तभी वह कोई कार्य करता है,बिना सुख के नहीं। वे आगे कहते हैं–''यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखं भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति...''। छा07–23–1 अर्थात् निश्चय ही जो भूमा है वही सुख है,अल्प में सुख नहीं है। शाश्वतसुख भूमा ही है। भूमा की ही विशेषरूप से जिज्ञासा करनी चाहिये। '' यत्र नान्यपश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमाथ....'' छा07–24–1। अर्थात जहाँ कुछ और नहीं देखता,कुछ और नहीं सुनता तथा कुछ और नहीं जानता, वह भूमा है। भूमा की यह अवस्था ज्ञानियों का सर्वस्व है, जिसे भक्त एवं गोपियों की तरह भगवत पराप्रेमपिपासु भी अपने उपास्य के चरणारविन्द में अपनी प्रपत्ति या पूर्ण समर्पण द्वारा अनायस ही पा लेते हैं। ब्रह्म के भूमा स्वरूप को पाकर ज्ञाता,ज्ञान एवं ज्ञेय की त्रिपुटी कहाँ रह जाती है। सही है गोपियों को अपने प्रियतम श्रीकृष्ण के सिवाय कहाँ कुछ दीखता था। वे तो उद्धव के माध्यम से प्रियतम श्रीकृष्ण के द्वारा प्रेषित ज्ञान का भी तिरस्कार सा करती दिखतीं हैं। क्यों न करतीं, उनके प्रियतम कृष्ण तो वे हैं, जो ज्ञानियों के परम लक्ष्य ब्रह्मज्योति से भी परे उस गोलोक धाम में व्यक्ताव्यक्तादि अपने सभी भावों से स्वरूपतः अच्युत रहकर अपनी मायाशक्ति द्वारा रचित अनन्तलोकों,लोकवासियों का नियमन करते हैं। सर्वतोभावेन अनन्त भगवान के पराप्रीत्योदधि में निमग्न इन गोपियों के सामने ज्ञान की अहमियत नहीं थी, तो यह स्वाभाविक ही है। श्रीकृष्ण के भूमत्व की यह बात भागवत में भगवान द्वारा गोप सखाओं की इच्छा पर उन्हें अपने लोक का दर्शन कराने के समय स्पष्ट हो जाती है जिसे अपने इस प्रबंध में मैंने इस प्रकार लिखा है।–

जवना ब्रह्म के श्रुति पहिले त करत करत विधिमुख व्याख्यान
अंत में ना पाके मन, वचन के ब्रह्म तत्व तक तनी सकान।
नृप! निषेधमुख 'नेति नेति' कहि छोड़ेली जा अनुसंधान
ओहू ब्रह्म से बा श्रीकृष्ण के परम धाम अति परे, महान।। अ0 सर्ग–19–79।।

देखिके परमधाम हरि के नन्दादि परम आनन्दित भइले।
वेद के परगट होके कृष्ण के स्तुति देखि अचम्भित भइले।। अ0 सर्ग–19–80।।

तथ्य यह है कि ब्रह्म, जिससे गोप,गोपियों एवं भक्तों के श्रीकृष्ण अभिन्न भी हैं और परे भी, एक साथ सत्य,ज्ञान,अनन्त एवं आनन्द है। वह नेति,नेति है और उससे भी परे भी है,जिसे शायद वही जानता होगा। वैदिक ऋषि प्रजापति परमेष्ठी के नाम से सम्भवतः स्वयम्भू ब्रह्मा ने ऋत् एवं सत्य की गवेषणा के क्रम में श्रीकृष्ण नाम से लोकमानस को श्रुति–शास्त्र–पुराणादि द्वारा प्रत्यक्षीभूत कराए गये उस परमसत्य ब्रह्म के अस्तित्व एवं अनन्तत्व का संकेत ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में सृष्टि के आदि में इस प्रकार किया है–''न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः। आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास।।'' ऋ0सं010–129–2। अर्थात 'सृष्टि से पूर्व न मृत्यु थी, न अमरत्व था,न दिन था,न रात थी। तब यह प्राणवायु भी नहीं था। बस एकमात्र ब्रह्मरुप निरपेक्ष सत्ता का ही अस्तित्व था।' ऋषि आगे के मन्त्र में यहाँ तक कहने लगते हैं–''इयं विसृष्टिर्यत



www.bhojpurisahityangan.com

आबभूव यदि वा दधे यदि वा न। यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अंग वेद यदि वा न वेद।।''–ऋ0सं010–129–7 अर्थात 'इस सृष्टि की उत्पत्ति कैसे हुई,किसने इसकी रचना की या किसने नहीं की,इन सभी बातों को एकमात्र वही ब्रह्म या परमात्मा जानता होगा जो इस सृष्टि का अध्यक्ष है एवं परमधाम में रहता है। अथवा यह भी सम्भव है कि वह भी इस सम्बंध में पूर्णतया न जानता हो।' तभी तो ज्ञानगवेषणा के इसी अनुक्रम में तैत्तिरीयोपनिषद् के ब्रह्मानन्दवल्ली मंत्र 2–1–1 में श्रुति की घोषणा हैः– ''......सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।...''। आगे फिर इसी उपनिषद् की भृगुवल्ली मंत्र 3–6–1 में आनन्द को ब्रह्म कहा गया है। ''आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्।'' अब जब गोपियों को कृष्ण की यानि साक्षात् परमानन्द की अनुभूति हो गयी तो सत्य,ज्ञान,अनन्त ब्रह्म का तो कृष्ण में समाहार होने से उद्धव के माध्यम से प्राप्त ज्ञान की अब कितनी उपादेयता उनके लिए रह गयी थी। गोपियों की तरह जिन्हें कृष्णानन्द सीधे प्राप्त नहीं है उन्हें तो ज्ञान अथवा अव्यभिचारिणी भक्ति का संबल लेकर और ब्रह्म के ज्ञानस्वरूप से गुजरकर ही कृष्णरूपी ब्रह्मानन्द मिल सकता है। अतः ब्रह्मानन्दमय होने तक ज्ञान एवं भक्ति ही से जीव अपने परम लक्ष्य शाश्वत आनन्द की आशा कर सकता है। जैसा कि उपर वर्णित है, ज्ञानयोगी एवं भक्त का रास्ता आगे चलकर एक हो जाता है। इसलिए भगवान ने गीता में ज्ञानयोग,कर्मयोग और भक्तियोग की विवेचना अलग अलग करने के बावजूद यह कहा है कि उन्हें ज्ञानी भक्त अतिशय प्रिय है। '' तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एक भक्तिर्विशिष्यते। प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः–गीता 7–17 यानि भक्तजनों की चार कोटियों–आर्त,जिज्ञासु,अर्थार्थी और ज्ञानी में से मुझमें नित्य एकीभाव से स्थित अनन्य प्रेम–भक्तिवाला ज्ञानी भक्त अति उत्तम है,क्योंकि मुझको तत्व से जाननेवाले ज्ञानी को मैं अत्यन्त प्रिय हूँ और वह ज्ञानी मुझे अत्यन्त प्रिय है।'' और अगले ही श्लोक में भगवान यहाँ तक कह देते हैं–....ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्,ज्ञानी तो मेरा आत्मा ही है। लेकिन ज्ञानी की तो अनेक स्थितियाँ मिलती हैं। आत्मज्ञानी,ब्रह्मज्ञानी,तत्वज्ञानी,भक्तज्ञानी आदि, आदि। तब भगवान जिसे अपनी आत्मा कहते हैं, वह कौन ज्ञानी है। इसके लिए इसी अध्याय में जरा पीछे जाने पर भगवान कहते हैं–'दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया। मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।।–गी07–14 । साफ है कि श्रोत्रिय एवं ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु से साक्षात् या उनके वचनानुशयी ग्रन्थों की स्नेहमयी छाया में सद्विवेकपूर्वक उपार्जित उपनिषद्,वेदान्तसूत्र एवं स्वयं पद्मनाभ भगवान श्रीकृष्ण के गीता प्रशस्त ज्ञान सहित केवल भगवान के चरणारविन्दों में प्रपत्ति ग्रहणकर उनकी अव्यभिचारिणी भक्ति,कैंकर्य में सतत गद्गदकण्ठ अश्रुपात करनेवाला आपेक्षिक मौन ज्ञानी ही कृष्ण का आत्मा यानि उनका प्रिय स्वरुप हो सकता है,दुसरा नहीं,ऐसा मेरा मानना है। वैसे भगवान के सच्चे भक्त न जानते हुए भी ज्ञान के उस प्रासाद पर प्रतिष्ठित रहते हैं,जिसको ज्ञानी भी इन्द्रियो को विषयों से उपरत कर तथा नियतकर्म–इष्ट,पूर्त,दत्तादि लोकोपकारी कर्मो को करते हुए तत्वचिन्तन द्वारा मन बुद्धि से परे सर्वव्यापी, अकथनीयस्वरूप और सदा एकरस रहनेवाले,नित्य,कूटस्थ,अविक्रिय,अक्षर,अचल,निराकार–साकार एवं इससे परे अविनाशी,सच्चिदानन्दघन ब्रह्म को निरन्तर एकीभाव से ध्यान करते हुए भजते हैं। वे सम्पूर्ण भूतों के हित में रत और सबमें समान भाववाले योगी भगवान को ही प्राप्त होते हैं। ऐसे योगी प्रारब्धशरीर को छोड़ने तक ज्ञान की उक्त उच्चावस्था में स्थित रहकर निष्कामभाव से नियतकर्म एवं लोकसंग्रह के कार्यों का सम्पादन करते रहते हैं।

''ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते।
सर्वत्रगमचिन्त्ययं च कुटस्थमचलं ध्रुवम्।।
सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहितेरताः।।''गीता अ012–3,4

अब इससे पूर्व विमर्शित निराकार की साकार यानि व्यष्टिगत अस्तित्व से काठिन्ययुक्त अवगम्यता एवं उपासना का गीतानुशीलन के प्रसंगवश पुनरीक्षण करें तो पाते हैं कि अगले ही श्लोक में भगवान कहते है–व्यक्त अस्तित्व वाले यानि देहाभिमानियों द्वारा अव्यक्त यानि निराकार ब्रह्म की उपासना के साधनों में परिश्रम एवं कष्ट बहुत है,क्योंकि देहाभिमानियों द्वारा अव्यक्तविषयक गति दुःखपूर्वक प्राप्त की जाती है।–'' क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्। अव्यक्ता हि गतिदुःखं देहवद्भिरवाप्यते।। गीता 12–5।। अब ऐसा ज्ञानी अनन्य प्रेम–भक्ति से भगवान में एकीभाव से स्थित हो तब तो कहना ही क्या। भगवान ऐसे ज्ञानी भक्तों का मृत्युरूप संसारसागर से उद्धार करने की गारण्टी भी लेते हैं।–''तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।...'' गीता12–7



www.bhojpurisahityangan.com

अब यदि हम भारतीय तत्वचिन्तन की धारा में कुछ और अवगाहन करें तो श्रुतियाँ ज्ञान एवं कर्म के सम्मुचय पर बल देती दिखती हैं। ''विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभय ँसह। अविद्ययया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते।।'' ईशोप0–11अर्थात जो विद्या (ज्ञान) एवं अविद्या (नियतकर्मादि ) को एक साथ जानता है,वह अविद्या यानि अपरा विद्या यानि नियत कर्मों का फलासक्तिरहित सम्पादन करते हुए देहविसरण या देहान्तररुपी मृत्यु को पार कर यानि प्रारब्धशरीर के नाश के पश्चात्, किम्वा जीते जी भी, जीवन–मुक्त की तरह, साधनचतुष्टयादि श्रेयस् पथ पर ईश्वर की उपासनापूर्वक बृहदारण्यक–छान्दोग्य–कठ–तैत्तिरीय–मुण्डक–श्वेताश्वतर–माण्डूक्यादि श्रुतियों में प्रशस्त ब्रह्मविद्या या पराविद्या से अमरत्व प्राप्त कर लेता है।

भागवत के दशम स्कंध के पूर्वार्ध में वर्णित गोपियों का प्रेम यद्यपि लौकिक प्रेम की तरह ही अपने प्रियतम कृष्ण के मधुर मुस्कान,कामोत्तेजक चितवन,आलिंगन एवं अपने वक्षःस्थलों पर उनके स्पर्श एवं उनके ओष्ठद्वय के मादक रस की अपेक्षा रखता था। परन्तु गोपियों में कामप्रेरित जारपुरुषप्राप्य अथवा दाम्पत्यजनित अन्तरंगता की ओर, रास सहित कई स्थलों पर कृष्ण की उत्तेजक सुलभता के बावजूद, अग्रसर होने की आतुरतानुत्वरित पार्थिव काम की पूर्ति का लक्ष्य कहीं नहीं दीखता है। वे तो अपने प्रियतम के सामीप्य के लिए तरसती हैं एवं कभी उसे पा लेने पर अपने हृदय में अपने प्रेमी के आकर्षक रूप,मोहक मुस्कान,तिरछी कामोत्तेजक चितवन,रसपेशल प्रेमालाप एवं मादक हाव–भाव से लगी अदम्य लालसारूपी धधकती आग को बुझाने के लिए प्रियतम को अपनी बाहों में लेकर चुमती हैं, अपने कठोर वक्षस्थलों पर कृष्ण के कमल सरीखे कोमल चरणों को नितरां धीरे से ही रखती हैं ताकि उन्हें चोट न पहुँचे। कृष्ण के इतने ही सामीप्य एवं अन्तरंगता से गोपियों को वह आनन्द मिलता था जिसके सामने लौकिक दाम्पत्य अथवा दाम्पत्य परे जारपुरुषसंसर्गादिजन्य दैहिक अन्तरंगता क्षणिक आवेग एवं स्पर्शातिरेकजनित आनन्दादि के अवसान आदि के पार्थिव अनिवार्योपलब्धि के कारण तुच्छ है तथा अटुट,अकल्मष प्रेम की सिद्धि के लिए अवांक्षनीय भी। और प्रेमी,प्रेमिका के बीच दाम्पत्यावस्था आए, न आए पर यदि ऐसी अलांक्षित अन्तरंगता, ऐसा प्रेमसंबंध हो तो उसे अलौकिक कहना क्या अतिवदन अथवा वदतोव्याघातग्रस्त कथन है?

अस्तु! रचना का प्रारम्भ सर्ग–1 में प्रबंधकाव्यों में प्रशस्त 'आशीर्नमस्क्रियावस्तुनिर्देशात्मक' आदि मांगलिक वचनों के अनुरूप ''मांगलिक सुमिरन अउर निहोरा'' से प्रारम्भ होता है। प्रथम सर्ग में आशीर्वाद,नमस्कार के बाद प्रबंधकाव्य के वस्तु–निर्देश–वर्ण्य,कथ्य विषयादि का संक्षिप्त उल्लेख मैंने कुछ इस प्रकार किया है।

बा ई मूलरूप से श्रीमद्भागवत–महापुराण से लीहल
दशम स्कन्ध–पूर्वार्ध कथा संग ब्रह्मवैवर्त से बा कुछु लीहल।
गोपीकृष्ण के लीला जेकरा लागे लौकिकता में रीन्हल
देखी जब प्रस्थानत्रयी तब लागी ई विचार अति गीरल।। 24।।

वेद ''...रसो वै सः'' श्रीकृष्ण के कहेला एह से रस ही रऽस।
मिली ऊ हृदयी पाठक लोग के पढ़िके उनुकर लीला,जऽस।। 25।।

इस प्रबंधकाव्य में वस्तु–निर्देश के तहत उपर्युक्त चारों प्रस्थानत्रयीय सर्गो के वर्ण्यविषय–ब्रह्म,ईश्वर,माया,जगत,जीवादि के भाव–विवेचन–विमर्श एवं प्रस्थानत्रयी,दर्शनशास्त्र आदि के अनुशीलन से उपजे कुछ ज्ञानाशयी भावादि का उल्लेख मैने प्रथम सर्ग में इस प्रकार किया है।

परम सत्य के कुछु विमर्श जे बा प्रस्थानत्रयी में आईल
अरू हमरा छोटहन बुद्धिभवन में जे बा अबतक ज्ञान समाईल।
ऊ एहिजा हम राखत बानी कृष्ण बोध खातिर अगराईल
छमा करबि जा पाठक प्रकरण में जदि नइखे उचित कहाईल।। अ0 सर्ग–1–40।।



www.bhojpurisahityangan.com

प्रस्थानत्रयी के अतिरिक्त इस प्रबंध में मैंने भारतीय दर्शन में वेदान्त–प्रकरण के अन्तर्गत शंकराचार्य के अद्वैत वेदान्त तथा रामानुजाचार्य एवं उनके विशिष्टाद्वैत दर्शन के अतिरिक्त आस्तिक भारतीय दर्शन के अन्य आचार्यो एवं उनके दर्शन का भी संक्षिप्त उल्लेख किया है, जो गद्य–पद्यात्मकादि सर्वसृजन के आदिस्रोत एवं आदिसर्जक की मानुषी लीलाभिव्यंजनारुप इस महाकाव्य के महानायक श्रीकृष्ण के लीलावपुस् के साथ ही उनके अनन्त वाङ्मय एवं ज्ञानमयवपुस् का अंश होने के नाते व्यन्जनीय तो है ही, भारतीय वाङ्मय की ज्ञान–भक्तिरुप यात्रा में स्तुत एवं विश्रुत भी है। इन महामनीषियों सहित अन्य धार्मिक,दार्शनिक महापुरुषों का इस प्रबंधकाव्य की भूमिका में संक्षिप्त उल्लेख इस प्रबंध के उपजीव्यकाव्यानुश्रयी श्रीमद्भागवत के ज्ञान–भक्ति की उर्वरा पृष्ठभूम्यानुप्रसूत होने के साथ साथ महाकाव्यगत अर्थ,धर्म,काम,मोक्ष आदि सम्पूर्ण लक्षणों के समावेश का संकेतक होने से भी समीचीन प्रतीत होता है।

शंकराचार्य (9वीं शताब्दी) ने अपने दादागुरू गौड़पादाचार्य की माण्डूक्य उपनिषद् पर रचित कारिकाओं एवं वेदान्त की निर्गुणपरक श्रुतियों को मुख्य तथा सगुणपरक श्रुतियों को गौड़ मानते हुए ईशादि प्रमुख उपनिषदों के भाष्य, बादरायण के ब्रह्मसूत्र पर शारीरिक भाष्य तथा स्वरचित प्रकरण ग्रन्थों में अद्वैतवेदान्त को एक विशिष्ट तत्वदर्शन के रुप में सुस्थापित एवं सुसम्पुष्ट किया। उनके द्वारा उच्चकोटि के ज्ञान की प्रतिष्ठा होने के बावजूद उस ज्ञान से प्रायः अनभिज्ञ, किम्वा तटस्थ आम हिन्दू जनमानस ईश्वर के सर्वसुलभ स्वरूप से अवगत होने के पथ यानि भक्ति के राजमार्ग से कुछ शदियों तक अपरिचित ही रहा। शंकर अपने प्रबल द्वन्द्वात्मक तर्क पद्धति एवं अकाट्य युक्तियों से डंके की चोट पर उपनिषदों एवं ब्रह्मसूत्रादि पर शारीरिक भाष्य के अतिरिक्त विवेकचूणामणि नामक ग्रन्थ में अपने दर्शन–अद्वैतवेदान्त की घोषणा आधे श्लोक में ही इस प्रकार करते हैंः–'' श्लोकार्द्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थकोटिभिः। ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः।। अर्थात ब्रह्म सत्य है, संसार मिथ्या है और जीव ब्रह्म ही है उससे भिन्न नहीं। शंकराचार्य के अद्वैतदर्शन में ब्रह्म विशुद्ध ज्ञानस्वरुप, अनौपाधिक सत्ता तथा एकमात्र पारमार्थिक सत्य है। वह दिक्,काल तथा कारण नियमों से परे होने पर भी प्रातिभाषिक एवं व्यावहारिक आपेक्षिक सत्ता का आधार तो है, पर द्रव्य नहीं है। इसके अतिरिक्त ब्रह्म वेदान्त दर्शन में वर्णित सजातीय,विजातीय तथा स्वगत इन तीनो भेदों से रहित है। शंकर जगत की व्यावहारिक सत्ता का एवं तत्वतः ब्रह्म स्वरुप जीव को औपाधिक जीव होने की भ्रान्ति के लिए ब्रह्म पर अश्रित स्वरुपतः सदसदनिवर्चनीया माया व त्रिगुणात्मिका प्रकृति, जिसे वे कभी अविद्या,कभी मूलाविद्या,कभी अध्यास–अध्यारोप,कभी विवर्त एवं कभी भ्रान्ति कहते हैं, को आधार मानते हैं। अनिर्ववचनीय माया के आधार पर ब्रह्म को औपाधिक जीव एवं व्यावहारिक जगत के मिथ्यात्व की सिद्धि करनेवाले शांकर अद्वैत सिद्धान्त को मायावाद भी कहा जाता है। शंकराचार्य माया के आलोक में ब्रह्म और ईश्वर में भेद करते हैं। शंकराचार्य का ब्रह्म कूटस्थ,निर्गुण,निराकार,प्रपंचोपशम,शिवाद्वैत एवं निर्विशेष है। वे ईश्वर को माया में प्रतिबिम्बित ब्रह्म या केवल अपर ब्रह्म अथवा मायोपहति ब्रह्म या कभी सविशेष ब्रह्म कहते हैं,जो सर्वज्ञ,सर्वत्र व्यापक,स्वतन्त्र,एक,अन्तर्यामी एवं माया का स्वामी–मायाधीश है। शंकर के अद्वैतदर्शन में ब्रह्म अपनी ही सत्व–रज–तम अवयवयुक्त त्रिगुणात्मिका माया में प्रतिबिम्बित होकर ईश्वर के रुप में अपनी अध्यक्षता में रचित मायामय अखिल जगत एवं मायिक उपाधिगत अनन्त जीवों का नियमन तथा संचालन करता है। अद्वैतवेदान्त दर्शन में आचार्य शंकर के द्वारा माया एवं ईश्वर की यह परिकल्पना श्वेताश्वतरोपनिषद् में आए माया एवं मायिन–महेश्वर से संबंधित मन्त्रों से परिबृंहित एवं विवेचित जान पड़ती है।– ''माया तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्। तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्।।–श्वेता0 4–10। 'अर्थात् माया को तो प्रकृति जानना चाहिए और सर्वनियन्ता महेश्वर को मायिन् या मायावी समझना चाहिए। उसी महेश्वर के अधीन उसकी प्रकृति के अवयवभूत कार्य–कारणरुप संघात से यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है।' भारतीय आस्तिक दर्शन के वेदान्त–दर्शन में अद्वैतब्रह्म का माया में प्रतिबिम्बित अपरब्रह्मरुप–ईश्वर तत्वमीमांशा के क्षेत्र में शंकराचार्य का अद्वितीय अवदान है। शंकर के अनुसार माया की अविद्यारुपी दो महान शक्तियों–आवरण एवं विक्षेप के प्रभाव से तत्वतः ब्रह्मस्वरुप–आकाश की तरह निर्लिप्त जीवात्मा अविद्याजन्य शरीर,इन्द्रिय,मन आदि उपाधियों में अपने को विन्यस्तकर अपने वास्तविक ब्रह्मस्वरुप की विस्मृति से घटाकाश की तरह सीमित होकर जन्म,मृत्यु,सुख,दुःख आदि द्वन्द्वो में अनादिकाल से अपने कर्मानुसार घूम रहा है। यानि शंकराचार्य के अनुसार अविद्या में प्रतिबिम्बित आत्मा ही जीव की उपाधि प्राप्तकर अनादि काल से भव के दुष्चक्र में फँसा हुआ है। जीव का भवनाश यानि जन्म–मृत्यु



www.bhojpurisahityangan.com

के कुचक्र एवं सभी प्रकार के बंधनो से मुक्ति ज्ञान से ही सम्भव है,न कि इष्ट–यज्ञ,दत्त–दान और पूर्त–लोकोपकारी कार्य–निर्माण आदि जैसे किसी भी प्रकार के पूण्यादि कर्मो से। शंकराचार्य स्वरचित आधार एवं प्रकरण ग्रन्थों में कर्म और ज्ञान में स्वाभाविक विरोध मानते हैं। आचार्य माया या अविद्या को, उसकी आवरण एवं विक्षेप की विशिष्ट शक्तियों से औपाधिक जीवों को स्वप्न में दृष्टगत मिथ्यात्व की तरह सर्वजाग्रतानुदृष्ट व अनुभूत जगत् को भी, ब्रह्म का विवर्त यानि रस्सी में साँप के भ्रम की तरह प्रतीति कराने के लिए जिम्मेदार कहते हैं। यानि जैसे द्रष्टा को धूंधले प्रकाश के कारण रस्सी साँप प्रतीत होती है, उसी प्रकार शरीर,इन्द्रिय,मन,बुद्धि आदि अविद्याजन्य मिथ्या उपाधियों से स्वयं ब्रह्मस्वरुप जीव विशुद्ध तात्विकस्वरुप की जगह जगद्रूप प्रपंच का अनुभव करते हैं। जैसे प्रकाश होने के साथ ही रस्सी की जगह प्रतीत होनेवाला साँप गायब हो जाता है, ठीक उसी प्रकार वेदान्तजात विशुद्ध ज्ञानरुपी प्रकाश से संसार–प्रपंच गायब होकर उसकी जगह केवल शुद्ध ब्रह्म रह जाता है। तब ज्ञाता,ज्ञेय एवं ज्ञान की त्रिपुटी एकमात्र परमब्रह्म में समुद्र में विलीन हुई नदियों की तरह समाहित हो जाती है। शंकर के माया संबंधी विचार के विमर्श में हम पाते हैं कि शंकर माया को अनादि एवं ब्रह्म पर आश्रित मानते हैं। परन्तु ब्रह्म माया से सर्वथा अस्पृष्ट रहता है। माया के दो स्वरुप हैं–भावात्मक एवं निषेधात्मक। ब्रह्म की भावरुप माया से नाना रुपात्मक विश्वोत्पत्ति होती है। निषेधात्मक पक्ष में माया सत्य पर आवरण डालकर अपनी विक्षेप–अध्यास या विवर्त शक्ति द्वारा ब्रह्म की जगह पर जगह नाना प्रपंचात्मक संसार को उपस्थित करती है। शंकराचार्य के अनुसार पारमार्थिक रुप से जगत नहीं रहते हुए भी माया की भावात्मक एवं विक्षेप शक्तियों के कारण जगत के रुप में अध्यसित या विवर्तित होता है। इस रुप में माया ब्रह्म का विवर्त है, जिससे ब्रह्म पर व्यावहारिक जगत का आरोप माया में प्रतिबिम्बित ब्रह्मरुप जीव द्वारा किया जाता है। माया का ब्रह्म से अलग कोई अस्तित्व नहीं है। माया न सत् है,न असत् है न सदसत् दोनों है। चूँकि ब्रह्म से भिन्न इसकी कोई सत्ता नही है,अतः यह सत् नहीं है। यह असत् भी नहीं है, क्योंकि इसके द्वारा नाना प्रपंचात्मक संसार प्रतीत होता है। माया को सत्,असत् दोनों नहीं कह सकते हैं क्योंकि ऐसा कहना वदतोव्याघात एवं विरोधात्मक होगा। अतः शंकर को माया को सदसदनिवर्चनीय कहना पड़ता है। माया के इन विशेषताओं पर विशिष्टाद्वैत दर्शन के प्रवर्तक श्रीरामानुजाचार्य के मत मे अनेक आपत्तियाँ या आक्षेप लगाये गये हैं। प्रथमतः माया का आश्रय कहाँ है?–आश्रयानुपपत्ति। माया का आश्रय यदि ब्रह्म है तो ब्रह्म का अद्वैत खण्डित हो जाता है। यदि माया का आश्रय जीव है तो ऐसा सम्भव नहीं है,क्योंकि जीव स्वयं माया–अविद्या का कार्य है। शांकर मतानुयायी कहते हैं–ब्रह्म ही माया का आधार है, परन्तु अपनी माया से वह स्वयं वैसे ही नहीं प्रभावित होता जैसे जादूगर अपनी जादू से प्रभावित नहीं होता है। अविद्या स्वयंप्रकाश ब्रह्म पर पर्दा कैसे डाल सकती है–तिरोधानानुपपत्ति। शांकर मतानुयायी कहते हैं जैसे बादलों से सूर्य ढक जाता है,परन्तु सूर्य का प्रकाश देना नहीं बाधित होता है। स्वरुपानुपपत्ति के तहत अविद्या के भाव–निषेधात्मक पक्ष पर प्रहार करते हुए श्रीरामानुज मतानुयायी कहते हैं कि यदि माया ब्रह्म के द्वारा अभिव्यक्त होती है तो जीव के लिए मुक्ति असम्भव हो जायेगी। अद्वैतवादी कहते हैं कि अविद्या को ब्रह्म में निहित मान लेने पर ऐसी कोई बाधा नहीं होगी,क्योंकि अविद्या स्वयं मिथ्या है। इसी तरह अद्वैत सिद्धान्त के माया की अनिर्वचनीयता पर श्रीरामानुजाचार्य की आपत्ति–अनिर्वचनीयानुपपत्ति,अविद्या के प्रमाण के लिए प्रमाणानुपपत्ति आदि आपत्तियाँ अद्वैतमत के माया की परिकल्पना पर उठायी गयी हैं एवं शांकर अद्वैतवाद को असिद्ध,यहाँ तक कि शंकराचार्य को प्रछन्न बौद्ध वैनासिक या शून्यवादी कहा गया है, जिनका खण्डन शांकर मतावलम्बी अपने ग्रन्थों में करते हैं। वास्तव में शंकराचार्य का अद्वैत सिद्धान्त माया की अनिर्वचनीयता के आधार पर ब्रह्म के अद्वैता एवं जगत के मिथ्यात्व पर कोई आँच नहीं आने देता। लेकिन तब भी यह तो मानना ही पड़ता है कि जीव रुप में ब्रह्म माया की अविद्या शक्ति से प्रभावित तो होता ही है। अतः शंकराचार्य के इस कथन, कि 'जीवो ब्रह्मैव नापरः',–के अनुसार जीव को अपने आप में परम ब्रह्म ही मानने पर वेदान्त के अन्य दार्शनिकों, विशेषकर श्रीरामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त में उपर्युक्त कड़ी आपत्तियों के साथ शांकर अद्वैत–सिद्धि पर प्रश्नचिन्ह लगाते हुए चिदचिद्विशिष्ट अद्वैत ब्रह्म की सिद्धि सफलतापूर्वक स्थापित की गयी है, जिसकी व्याख्या आगे श्रीरामानुज दर्शन में किंचित् विशदरुप में इस भूमिका में की गयी है। जीव को वेदान्त निर्विवादरुप से ब्रह्म तो मानता है, परन्तु जीव के ब्रह्म से अनुभूत प्रतीतिक ही सही, भेद को वेदान्त 'तत्वमसि'–छान्दोग्योपनिषद् में नाम–रुपात्मक भेद के तहत जीव तथा ब्रह्म का ऐक्य 'तादात्म्य' के तहत स्थापित करता है। एक ही तत्व का



www.bhojpurisahityangan.com

बिना रुप–भेद के तादात्म्य नहीं हो सकता। तत्वतः जीव और ब्रह्म में अभेद तो है, परन्तु यह अभेद सदा अपृथक–सिद्ध भेद से विशिष्ट होता है। श्रीरामानुजाचार्य मानते हैं कि शुद्ध भेद और शुद्ध अभेद कोरी कल्पना है,जो युक्तिसिद्ध है,अतएव सर्वस्वीकार्य है। महर्षि बादरायण,जो वेदव्यास ही है,ने वेदान्त–सूत्र या ब्रह्मसूत्र में जीव एवं ब्रह्म में युक्तिसम्मत भेद माना है–''अधिकं तु भेदनिर्देशात् ब्र0सू0 2–1–22। अर्थात यह कहना कि, ब्रह्म स्वयं ही जीव रुप से भोक्ता बनकर संसार में आता है,समीचीन नहीं है। भोक्ता जीवात्मा तथा ब्रह्म दोनों भिन्न तत्व हैं। सूत्रकार कहते है कि ब्रह्म जीव से सर्वथा विलक्षण है–जीव अल्पज्ञ है,अल्पशक्ति है,अणु है,परिमित है एवं ब्रह्म सर्वज्ञ है,सर्वशक्तिमान है,सर्वान्तर्यामी तथा सृष्टि–संहारकर्ता है। जीव और ब्रह्म का भेद औपाधिक नहीं,वास्तविक है जो श्रुतियों में जगह जगह प्रतिपादित है। हाँ, शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित जगत के मिथ्यात्व के सम्बंध में यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि शंकर जगत को बन्ध्यापुत्र या खरगोश के सींग की तरह मिथ्या–असत् नहीं मानते, बल्कि सत्ता के तीन स्वरुपों–प्रातिभासिक सत्ता,व्यावहारिक सत्ता तथा पारमार्थिक सत्ता में से जगत को व्यावहारिक सत्ता प्रदान करते हैं। उनके अनुसार जो तीनो कालों में सत्य नहीं है,वह मिथ्या है। केवल ब्रह्म ही तीनों कालों में सत्य है। परमार्थिक सत्य की सत्ता तीनों कालों में अबाधित रहती है। शंकर के अनुसार स्वप्न,भ्रम सत्य की प्रातिभासिक सत्ता के अन्तर्गत आते हैं, जिनका खण्डन जाग्रतावस्था में हो जाता है। जाग्रतावस्था में सत्य प्रतीत होनेवाली वस्तुएँ,अनुभव आदि की केवल व्यावहारिक सत्ता होती है, जिसका खण्डन केवल पारमार्थिक सत्ता–ब्रह्मज्ञान के फलस्वरुप ही होता है। ब्रह्मज्ञान से पूर्व जगत की व्यावहारिक सत्ता जैसी है, वैसी बनी रहती है। शंकराचार्य यह मानते हैं कि ब्रह्मज्ञान अर्थात मोक्ष के बाद भी जगत अपनी जगह बना रहता है। मुक्त या जीवन–मुक्त की जगत के प्रति दृष्टि–'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' की हो जाती है–यह सबकुछ सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म ही है,ब्रह्म से तत्वतः भिन्न कुछ भी नहीं है। मोक्ष प्राप्ति के उपरान्त जगत का तिरोभाव नहीं होता है, क्योंकि यदि ऐसा होता तो तो प्रथम साधक के मोक्ष के बाद ही विश्व का विनास हो गया रहता। अतः शंकर जगत को विशुद्ध मिथ्या नहीं मानते हैं। उनका कहना है कि जगत त्रिकालाबाधित सत्य नहीं रहने के कारण मिथ्या तो है, परन्तु इस मिथ्या जगत का आधार स्वयं ब्रह्म ही है, जिसके सापेक्ष अनन्त ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति एवं विनास का कम अनवरत जारी रहता है,फिर भी वह निरपेक्ष तत्व ब्रह्म कुछ कुछ जल से निर्लिप्त कमलपत्र के समान या नीला प्रतीत होने पर भी आकाश के वस्तुतः नीला नहीं रहने के समान वह ब्रह्म अपने स्वरुप में अक्षर,अच्युत,अविक्रिय,कूटस्थादि बना रहता है। भ्रम विचार के अन्तर्गत शंकर 'अनिवर्चनीय ख्यातिवाद' मानते हैं। उनके अनुसार भ्रम न सत् कहा जा सकता है,न असत्,न दोनों। उदाहरणार्थ रस्सी में सांप का भ्रम सत् नहीं कहा जा सकता क्योंकि प्रकाश होने के बाद सांप की जगह रस्सी रह जाती है, वह असत् भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि स्पष्ट ज्ञान होने तक उसकी प्रतीति होती है। रज्जु सर्प सदसत् दोनों नहीं कहा जा सकता क्योंकि रज्जु में सर्प का कोई सदंश नहीं होता और ऐसा कहना विरोधात्मक भी है। अतः रज्जु–सर्प सत् असत् दोनों से विलक्षण–अनिवर्चनीय है। शंकराचार्य का भ्रम विचार इस अर्थ में अनिवर्चनीय ख्यातिवाद है। इनमें से अधिकांश तथ्यों की विश्लेषणात्मक विवेचना एवं युक्तिसंगत काव्यमयी समीक्षा इस प्रबंधकाव्य के प्रस्थानत्रयी सर्गो में प्राप्य है।

दक्षिण भारत में ही आविर्भूत लक्ष्मणावतार श्रीरामानुजाचार्य (ई0 सन् 1017 से 1137 ) ने शांकर अद्वैतवेदान्त के जीव,जगत की व्याख्या के प्रमुख आधार मायावाद का खण्डन कर श्रुतियों की युक्तिसंगत व्याख्या एवं ब्रह्मसूत्र पर स्वरचित श्रीभाष्य नामक शारीरिक भाष्य एवं अन्य ग्रन्थों में अपने मत एवं विशिष्टाद्वैत दर्शन की प्रतिष्ठा की। उनके द्वारा ज्ञान की उच्च तथा बोधगम्यस्वरूप की प्रतिष्ठा के साथ साथ श्रुतियों में ब्रह्म के सगुणस्वरूप को गौड़ न मानते हुए भक्ति–तत्व की नींव श्रीसम्प्रदाय में रखी गई, जिससे भारत में वैष्णव सम्प्रदाय के अभ्युदय के साथ आगे भक्तिकाल सामने आया। श्रीरामानुचार्य ने श्रुतियों एवं वेदान्त के वास्तविक निहितार्थ के उद्‌बोध के साथ अपने मत एवं विशिष्टाद्वैतदर्शन की तात्विक प्रतिष्ठा बादरायण–वेदव्यास के ब्रह्मसूत्र पर श्रीभाष्य नाम से प्रसिद्ध शारीरिक भाष्य में करने के अतिरिक्त वेदान्तदीप,वेदान्त–सार नामक अपने दार्शनिक ग्रन्थों में भी की है। इसके अतिरिक्त आचार्यप्रवर ने अपने द्वारा उल्लसित चिदचित्‌विशिष्ट अद्वैत दर्शन–विशिष्टाद्वैत के आलोक में प्रतिष्ठित ज्ञान के सुगम साफल्य हेतु भगवान श्रीरंगनाथ के रुप में श्रीमन्नारायण की भक्ति,उपासना एवं आराधना को केन्द्र बिन्दु में रखकर भगवद्–भाव स्निग्ध गीता–भाष्य, वेदार्थ–संग्रह, भगवद् आराधन पद्धति, गद्यत्रय–श्रीशरणागति गद्य,श्रीरंग गद्य एवं श्रीवैकुण्ठ–गद्य का भी प्रणयन किया। श्रीरामानुजाचार्य आचार्य शंकर की



www.bhojpurisahityangan.com

तरह ब्रह्म एवं ईश्वर में स्वरुप–सत्ता भेद किञ्चित भी नहीं मानते। उनके अनुसार श्रुति–शास्त्र विमर्शित ब्रह्म और ईश्वर एक है। आचार्यप्रवर ने ब्रह्मविषयक कुछ श्रुतियों को मुख्य और कुछ श्रुतियों को गौड़ न मानकर उनकें वास्तविक अभिमत एवं ब्रह्मसूत्र के निहितार्थ के आधार पर स्पष्ट किया है कि ब्रह्म तो अद्वैत है ही, परन्तु वह अपने स्वगत (Coexsitent) एवं अपृथक–सिद्ध ( Inseparable) दो अंगों या अंशों या गुणों–चित्(जीव) एवं अचित्(जड़ जगत्) से विशिष्ट है। ब्रह्म के अपृथकसिद्ध तथा स्वगत ये अंश–चित्,अचित् तत्वतः अपने अंशी या अंगी ब्रह्म के समान ही सत्य तो हैं,परन्तु पूरी तरह ब्रह्म अथवा ईश्वर पर अश्रित एवं उससे नियन्त्रित हैं। अद्वैत ब्रह्म या ईश्वर के स्वगत एवं पूरी तरह नियाम्य चित्–सभी चेतन जीव तथा अचित्–सभी अचेतन पदार्थ ब्रह्म या ईश्वर के शरीर हैं तथा ईश्वर इन दोनों का अंगी,अंशी या शरीरी है। ब्रह्म स्वयं ही इस जगत का अभिन्न उपादान कारण ( Inherent matereal cause) तथा निमित्त कारण (efficient cause) है। अर्थात उसने स्वयं को जगत के रूप में वास्तविक रूप से रूपांतरित किया है–;सत्कार्यवाद के अन्तर्गत परिणामवाद' जो 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'–छान्दोग्योपनिषद्–3–14–1 आदि श्रुतियों से पूरी तरह स्पष्ट है। लौकिक सादृश्य में कुछ कुछ जल में जल से निर्लिप्त कमलपत्र की तरह वह इस परिवर्तन एवं संसार के सुख,दुःख से अस्पृष्ट एवं परे भी है। हो भी क्यों न, स्थूलजगत के उदाहरण में भी देखें तो मृदा के लिए विनिर्मातृत्व,विनियन्तृत्वादि गुणों से अभिसम्पन्न विनिर्माता,सर्जक कुम्हार घटादि के रुप में मृदा के रूप, आयामादि विकृति से कहाँ प्रभावित होता है। फिर ऋषिकल्प मानव के अकल्मष व उच्चतम मानस में दृष्ट एवं तद्प्रज्ञा–प्रमानुदृष्ट श्रुतियाँ तो अपने विधिमुख निर्वचन में उसे एक ही साथ यहाँ,वहाँ,सर्वत्र,सब एवं सब से परे–'तद्दूरे तद्वन्तिके','दूरात्सुदूरे तदिहान्तिके च','परात्परं पुरुषम्' आदि तो, वही निषेधमुख निर्वचन में उसे 'नेति नेति' भी कहती दिखती हैं। श्रीरामानुजाचार्य के चिदचित्विशिष्ट अद्वैतब्रह्म की अवधारणा,जो श्रुतियों,वेदान्त–दर्शन एवं गीतादि शास्त्रों के वास्तविक निहितार्थ से सुसम्पुष्ट है, विशिष्टाद्वैतदर्शन (The monoism of Brahman as established through Identity-in-Difference) का आधार है। जबकि शंकराचार्य जीव को तत्वतः स्वयं ज्ञानस्वरुप ब्रह्म मानने के कारण उपाधिगत अनन्त जीवों को ज्ञानस्वरुप मानते हैं, वहीं भगवद्रामानुजाचार्य जीवों को अनन्त, परन्तु उन्हें ज्ञाता मानते हैं। उनके विशिष्टाद्वैत दर्शन में ब्रह्म या ईश्वर, चित्–जीवात्मा,बंधन एवं मोक्ष,अचित्–प्रकृति,काल आदि तत्वों के विमर्श के सारांस से ऐसा अभिहित होता है कि ब्रह्म यानि ईश्वर द्वारा अपने चित् अंश या अंग या गुणस्वरुप जीवों को प्रदत्त कर्मस्वातन्त्र्य जीवों के बंधन एवं मोक्ष में प्रधान हेतु है। ब्रह्म के अपृथक–सिद्ध,स्वगत एवं नियाम्य अंश या अंग,शरीर अथवा गुण–चित् यानि जीव के द्वारा अनादि अविद्यावश ब्रह्म के अचित् अंग या अंश–त्रिगुणात्मिका प्रकृति के साथ आत्मभाव से तादात्म्यकर किये गये शुभाशुभ कर्मों से प्राप्तव्य अमृतफलाभिसंधि तथा उसकी प्राप्ति से उर्जित एवं चालित अनाश्रयदोषग्रस्त भयानक अनादि संसृति चक्र के बन्धन से उनकी मुक्ति हेतु ब्रह्म स्वयं निमित्त होकर एवं स्वयं को अर्थात अपने स्वगत एवं नियाम्य अचित् यानि प्रकृति को उपादान बनाकर तज्जनित सत्यपरिवर्तन(सत्कार्यवाद–परिणामवाद) के फलस्वरूप अनन्त ब्रह्माण्ड की सत्य सृष्टि करता है, जो तत्वतः किञ्चित भी स्वोद्देश्य, स्वानुरंजनार्थ न होकर अपने स्वगत एवं नियाम्य अनन्त जीवों के अनुरंजनार्थ एवं उद्धारार्थ होने से वस्तुतः उसकी लीलामात्र होना श्रुति–शास्त्र–पुराणादि सद्ग्रन्थों से अभिहित एवं सुसम्पुष्ट है। माया ब्रह्म के अधीन उसकी सत्य शक्ति है। ब्रह्म अपने अधीन अपनी सत्य शक्ति से अखिल विश्व का सृजन,संहार एवं नियमन आदि वस्तुतः जीवों को स्वप्रदत्त कर्मस्वातन्त्र्य का उनके द्वारा अनादि अविद्यावश दुरुपयोग से प्राप्त संसृतिचक्र से उद्धार के लिए करता है। जहाँ सांख्य प्रकृति को अपरिमित,जड़ एवं सत्व,रज तथा तम–इन तीन गुणों को उसका अवयवी तत्व मानता है, वहीं श्रीरामानुजाचार्य ब्रह्म के स्वगत,नियाम्य एवं अपृथक–सिद्ध अंग,गुण या अंश अचित् को जड़ मानने के साथ ही उसके तीन प्रकार मानते हैं–1.प्रकृति या मिश्रसत्व 2.नित्यविभूति या शुद्धसत्व तथा 3.काल या सत्वशून्य। जहाँ सांख्य में उसके तीनो अवयव–सत्व,रज,तम अलग नहीं रह सकते, वहीं श्रीरामानुजाचार्य नित्यविभूति को शुद्ध सत्व से निर्मित एवं प्रकृति को उसके उपर नित्यविभूति द्वारा सीमित मानते हैं। सांख्य जहाँ प्रकृति को स्वतंत्र मानता है, वहीं आचार्य श्रीरामानुज प्रकृति को ईश्वर पर पूर्णतः आश्रित– Absolutely dependent मानते हैं, जो ईश्वर का स्वगत अपृथकसिद्ध अंग या शरीर है। प्रकृति ईश्वर की लीलाविभूति है, क्योंकि अनन्त सृष्टि एवं संहार वस्तुतः ईश्वर की लीला ही है। आचार्यप्रवर कहते हैं कि ईश्वर की नित्यविभूति में ईश्वर एवं वहाँ के मुक्तात्माओं का शरीर शुद्धसत्व से बना है, जो धर्मभूतज्ञान की तरह अजड़–Immaterial and immutable है।



www.bhojpurisahityangan.com

ईश्वर की यह नित्यविभूति एक आदर्शलोक है। आचार्य के अनुसार ईश्वर की नित्यविभूति अपरिवर्तनशील तत्व से बनी है। इस प्रकार श्रीरामानुजाचार्य के अचित् के विमर्श में कुल छः तत्व सामने आते हैं–अचेतन या जड़ कोटि के अन्तर्गत 1.प्रकृति 2.काल। चेतन कोटि में–1.ईश्वर 2. चित् या जीव। अजड़ कोटि में–1.धर्मभूतज्ञान, 2.नित्यविभूति। इस प्रकार श्रीरामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैतदर्शन में ब्रह्म या ईश्वर अद्वैत है, जो चित्–जीवात्मा एवं अचित्–जड़ पदार्थ इन दो तत्वों से विशिष्ट है। परन्तु ये दोनों तत्व ईश्वर पर पूर्णतः अश्रित एवं उसके नियाम्य तथा एक दुसरे से पूर्णतः भिन्न एवं अलग अस्तित्व हैं। मुक्तावस्था में जीव तत्वतः ईश्वर के समान हो जाता है,ईश्वर के सत्,चित्,आनन्द में सहभागी होता है। परन्तु वह न तो ईश्वर के समान अनन्त,विभु हो जाता है और न ही उसमें ईश्वर के समान चराचर व अनन्त विश्व के नियन्त्रण की सद्यः शक्ति तथा अखिल,अनन्त ब्रह्माण्ड के सृष्टि,पालन एवं संहार करने की पराशक्ति आती है। तत्वमीमांसा या तत्वविचार के अन्तर्गत हमारे आचार्यप्रवर का मानना है कोई पदार्थ तत्व होते हुए भी परतन्त्र हो सकता है। यह तथ्य विज्ञान के भौतिकी,रसायनशास्त्र तथा क्वांटम–भौतिकी में स्पष्ट है। सोना,चाँदी,ताँबा,लोहा आदि अपने आप में तत्व(Element) हैं, परन्तु वे प्रकृति(Nature) एवं उसके विज्ञान के सापेक्ष,अधीन एवं उसके नियाम्य हैं। इस प्रकार आचार्य अपने विशिष्टाद्वैत दर्शन में अचित्(Matter), चित् (Soul) तथा ईश्वर(God) रुपी 'तत्वत्रय' में सभी को तत्व एवं सत्य स्वीकार करते हुए भी प्रथम दो तत्वों–जीव तथा जड़ को ईश्वर पर पूर्णतः आश्रित(Absolutely dependent) मानते हैं। वेदान्त–दर्शन में तीन प्रकार के भेद–स्वजातीय,विजातीय तथा स्वगतभेद की विवेचना मिलती है। श्रीरामानुजाचार्य जीव और ईश्वर के बीच शुद्ध भेद,अभेद ब्रह्म से अलग स्वीकार नहीं करते हैं। उनका कहना है कि शुद्ध भेद अथवा शुद्ध अभेद कल्पना मात्र है। आचार्य का कहना है कि ब्रह्म में न तो स्वजातीय (Homogeneous) भेद है और न ही विजातीय (Heterogeneous) भेद है। भेद और अभेद स्वगत (Inner) एवं अपृथकसिद्ध (Inseparable) हैं, जिन्हें अलग अलग मानना तात्विक भूल है। इस अपृथकसिद्ध संबंध में भेद गौड़ एवं अभेद मुख्य है। उनका कहना है कि चित् (Soul) तथा अचित् (Matter) अपने आप में तत्व तो हैं, परन्तु ईश्वर के सापेक्षतः ये उनके गुण (Attributes) हैं। आचार्यवर ने जीवों को तीन कोटियों में माना है–बद्ध जीव,मुक्त जीव तथा नित्य जीव। जिनका भवबंधन अभी खतम नहीं हुआ है, वे बद्धजीव हैं। जो ज्ञान–भक्ति समुच्चय एवं ईश्वरकृपा से भवबंधन से मुक्त हो गये हैं वे भगवान के लोक अथवा सभी लोकों में स्वेच्छा से विचरण कर भगवदानन्द में निमग्न होते हैं। नित्य जीव संसार में कभी नहीं आते हैं। महान वेदान्तिक उद्‌घोष–'तत्वमसि' के विमर्श में श्रीरामानुजाचार्य का कहना है कि प्रत्येक निर्णय विशिष्ट कथन का संश्लेषण होता है। पूर्णतः भिन्न दो वस्तुओं में दोनों के एक ही वस्तु होने का निर्णय असम्भव है। इसी प्रकार पूर्णतः अभिन्न दो वस्तुओं को एक कहने का निर्णय पुनरुक्ति (Tautology) मात्र है। इसी प्रकार वेदान्तिक उद्‌घोष–तत्वमसि यानि 'वह तू है' के निर्णय में 'वह' उस ब्रह्म,परमात्मा का सूचक है, जो सम्पूर्ण विश्व का कारण है। 'तू' उसी ब्रह्म का सूचक है, जो सभी जीवों का अन्तरात्मा है और दोनो एक ही परम तत्व या परमसत्य बह्म को उपलक्षित करते हैं। ये दोनों एक ही ब्रह्म के दो रुप अथवा पहलू हैं। इस तरह आचार्यवर श्रीरामानुज ने तादात्म्य की प्रकृति का बहुत ही सुन्दर विवेचन किया है। सही है तादात्म्य एक ही पदार्थ या तत्व के दो रुपों में होता है। तादात्म्य कभी बिना रुप–भेद के नहीं होता। यह सदैव किसी भिन्नता से विशिष्ट होता है। जैसे $(a+b)^2 = a^2 + b^2 + 2ab$ के बाँए पक्ष तथा दाहिने पक्ष का मान तो एक ही है, परन्तु रुपभेद या रुप भिन्नता से दोनों पक्षों में सापेक्ष अंतर भी प्रत्यक्ष दिखता है। यानि जीवात्मा ईश्वर का ही एक रुप है, जो उसके अन्तरात्मा में सदैव विद्यमान रहता है एवं इस तरह छान्दोग्यश्रुति के 'तत्वमससि' उद्‌घोष में जीव और ब्रह्म का तादात्म्य विश्व आध्यात्मिक ज्ञान तथा दर्शन के क्षेत्र में भारतीय आर्षमनीषा का अद्वितीय योगदान है जिसकी तर्कशास्त्रीय विवेचना श्रीरामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत दर्शन के श्लाघ्य वैशिष्ट्यों में से एक है। भ्रम–विचार के अन्तर्गत आचार्यवर सत्‌ख्यातिवाद मानते हैं। विशिष्टाद्वैत ज्ञान मीमांसा में मिथ्या ज्ञान का कोई स्थान नहीं है। यदि रस्सी सांप के रुप में दिखाई पड़ती है तो उसमें सर्पत्व–सर्प जैसी वक्रता आदि सत्य कारण है। इसी प्रकार सीप में मोती की प्रतीति मोती के सदंश के कारण होती है। श्रीरामानुज का सत्‌ख्यातिवाद माध्यमिक–शून्यवाद बौद्ध विचार के शून्यख्यातिवाद तथा विज्ञानवादी बौद्ध की आत्मख्यातिवाद का विरोधी है एवं शंकराचार्य के अनिर्वचनीय ख्याति को नहीं मानता है।



www.bhojpurisahityangan.com

श्रीशंकरचार्य के कर्म एवं ज्ञान के परस्पर विरोधी होने के विमर्श की जगह भगद्रामानुजाचार्य कर्म एवं ज्ञान को परस्पर विरोधी नहीं मानते हुए श्रुत्याभिपुष्ट कर्म, ज्ञान तथा भक्ति के समुच्चय पर बल देते है। ईश्वर प्रदत्त कर्म स्वातन्त्र्य का जीवों के द्वारा दुरूपयोग पाप्मत्व उत्पन्नकर उनके अनादि अविद्याजन्य बन्धन का हेतु है। कर्म,ज्ञान एवं भक्ति के समुच्चयादि के अनुशरण के रूप में कर्मस्वातन्त्र्य का सदुपयोग एवं ईश्वर के प्रति सर्वाकांक्षा–आसक्तिरहित विशुद्ध शरणागति से ईश्वर की प्रसन्नता जीवों के मोक्ष में प्रधान हेतु है। आचार्य ने कहा है कि ब्रह्म या ईश्वर असंख्य सद्गुणों का निधान है और वह सदा अपने आश्रित या प्रपन्न भक्तों की पुकार सुनता है एवं उनपर अहैतुकी कृपा के लिए सदैव तत्पर रहता है। जीव अपने अनादि अज्ञान,मोहादिजन्य कर्मों से संसारचक्र में सुख,दुःख भोगते हुए अनवरत घुमते रहता है। जीव अकारणकरूणावरूणालय श्रीमन्नारायण के ही अपर किन्तु अभिन्न स्वरुप श्रोत्रिय–ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरू–आचार्य में जब निष्कपट शरणागति करता है तो भगवान अपनी कृपा प्रदानकर भयानक भवसागर से उसका उद्धार कर देते हैं।

इस प्रकार श्रीरामानुजाचार्य ने श्रुतियों के तात्विक निहितार्थ के आधार पर ब्रह्म के अद्वैत की विशिष्टाद्वैत के रूप में तात्विक पुष्टि करते हुए ब्रह्म को असंख्य शुभगुणों–दया,क्षमाशीलता आदि के अपरिमित सागर के रूप में व्यक्तिगत आराधना एवं भक्ति के लिए जनसाधारण को सुलभ कर दिया। भारतवर्ष के तत्वचिंतनपरक धार्मिक जीवन अर्थात् वैष्णव मार्ग के लिए आचार्यप्रवर श्रीरामानुज स्वामी विशेषकर उत्तरभारत में आगामी भक्तिआंदोलन के लिए पथप्रदर्शक प्रभापुंज सिद्ध हुए। इस वैष्णव मार्ग के आारम्भिक काल में ही श्रीरामानुजाचार्य के कनीय समसामयिक श्रीनिम्बार्क द्वारा अपने द्वैताद्वैतमत की प्रतिष्ठा कर भेदाभेददर्शन में ब्रह्म एवं जीव में भेद एवं अभेद दोनों रूपों को एक साथ स्थापित किया गया। उन्होंने अपने दर्शन में कहा है कि जीव एवं ब्रह्म में भेद तथा अभेद दोनों सत्य है। श्रीनिम्बार्क के भेदाभेद मत को छोड़कर उनका दर्शन श्रीरामानुजाचार्य से बहुत मिलता जुलता है। वस्तुतः श्रीनिम्बार्क ने भेदाभेद मत के पूर्वाचार्यों यथा अश्मरथ्य,भर्तृप्रपंच,भास्कर तथा प्रारम्भिक काल में एक समय श्रीरामानुजाचार्य के वेदान्त शिक्षक रहे यादवप्रकाश के दर्शन को अपने विचारों के अनुरूप सुधारकर द्वैताद्वैत दर्शन के रूप में स्थापित किया।

ब्रह्म के सगुणस्वरूप के यात्रापथ में मध्वाचार्य (13वीं शताब्दी) ने द्वैत सम्प्रदाय या ब्रह्म सम्प्रदाय की स्थापना की। इन्हें आनन्दतीर्थ एवं पूर्णप्रज्ञ भी कहा जाता है। इन्होंने सैंतीस ग्रन्थों की रचना की, जिनमें से ब्रह्मसूत्र पर मध्व–भाष्य,गीता भाष्य, अणुव्याख्यान, भागवततात्पर्य–निर्णय आदि इनके द्वैतदर्शन के प्रमुख आधारग्रन्थ हैं। इनके अनुसार ब्रह्म एवं जीव दोनों अपने आप में सत्य लेकिन पूर्णतः पृथक अस्तित्व हैं और एक दुसरे से किसी भी तरह जुड़े हुए नहीं हैं। जीवों को इन्होंने तीन श्रेणियों का माना है–नित्यमुक्त,मुक्त तथा बद्ध। इनके अनुसार संसार भ्रम नहीं अपितु सत्य है, जिसे भगवान विष्णु ने बनाया है, परन्तु यह उनसे हीन एवं अलग अस्तित्व रखता है। ईश्वर, जीव एवं जगत अपनी प्रकृति में अद्वितीय है। परन्तु जीव एवं जगत स्वतंत्र नहीं, बल्कि ईश्वर पर निर्भर एवं उनसे नियंत्रित है। एकमात्र ईश्वर ही स्वतंत्र है। श्रीरामानुज की तरह मध्वाचार्य भी पूर्व मीमांसा एवं उत्तर मीमांसा को, कर्म–ज्ञान समुच्चय को दृष्टिपथ में रखकर, एक ही विषय मानते हैं। अनन्त शुभगुणों का निधान ईश्वर भक्ति से प्रसन्न होकर मुक्ति प्रदान करता है। उसका ज्ञान श्रुति–शास्त्रों द्वारा ही हो सकता है। विद्वानों ने रहस्यवादियों के प्रबल शत्रु पाश्चात्य दार्शनिक हेगेल की तरह मध्वाचार्य को शंकराचार्य के अद्वैत सिद्धान्त का जन्मजात शत्रु माना जाता है। श्रीमध्वाचार्य ने आचार्य शंकर पर वेदान्त के आवरण में छिपकर बौद्ध वैनासिको के असत्य शून्यवाद दर्शन की ही प्रतिष्ठा करने का गम्भीर आरोप स्वप्रणीत ग्रन्थों में सिद्ध किया है। ब्रह्म–जीव के तात्विक द्वैत को छोड़कर मध्व अथवा पूर्णप्रज्ञ के अधिकांश विचार–ज्ञानमीमांसा,तत्वमीमांसा आदि श्रीरामानुजाचार्य से मिलते जुलते हैं।

वैष्णव मत एवं तत्वचिंतन सहित भक्ति की विकास यात्रा में श्रीवल्लभाचार्य (15वीं शताब्दी ) ने पुष्टिमार्ग की स्थापना की। ये तैलंग ब्राह्मण थे, जिनका जन्म बनारस में हुआ था। इन्होंने ब्रह्म के तत्वचिंतन में शुद्धाद्वैत (pure monoism ) मत को स्थापित कर कहा कि ब्रह्म उभयलिंग अर्थात् निर्गुण तथा सगुण दोनों है। इनके आधारग्रन्थों एवं प्रकरणग्रन्थों के अनुशीलन से ऐसा प्रतीत होता है कि इन्होंने श्रुतियों यथा–सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेयेति.(तैत02–6–1 ),तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति (छा0 6–2–3 ) आदि एवं श्रुतियों के समन्वयार्थ बादरायण



www.bhojpurisahityangan.com

के वेदान्त–दर्शन.(ब्रह्मसूत्र) के सूत्रों यथा– 'जन्माद्यस्य यतः'(1–1–2 ) 'आत्मकृतेः(1–4–26 ), परिणामात्' (1–4–27 ) आदि को दृष्टिपथ में रखकर अपने प्रबल युक्तियों के द्वारा यह सिद्ध किया है कि ब्रह्म ने अपने को ही सृष्टि सामग्री (उपादान कारण) बनाकर अपने द्वारा (निमित्त कारण) ही अपने को सृष्टिरूप एवं जीवरूप में परिणित कर लिया। अपने को अपने अंश जीव एवं जगत या सृष्टि में परिणित कर लेना या बिखराना उसकी लीलामात्र है। ऐसा करके भी ब्रह्म अशब्द, अस्पर्श, अरूप, अव्यय, अच्युत,कूटस्थ बना रहता है। मूलतः दाक्षिणात्य श्री विष्णुस्वामी के सिद्धान्त को प्रवर्धित कर शुद्धाद्वैत दर्शन को स्थापित करनेवाले श्रीवल्लभाचार्य ने श्रीरामानुजाचार्य के परिणामवाद को और स्पष्ट करते हुए यह कहा कि ब्रह्म अपने अविर्भाव एवं तिरोभाव की दो विशिष्ट शक्तियों से जगत के रूप में अपने को परिणित और तिरोहित करता है। ब्रह्मसूत्र के 'पराभिध्यानात्तु तिरोहितं ततो हि अस्य बन्ध विपर्ययौ'–(3–2–5) तथा ' 'सम्पद्याविर्भावः स्वेन शब्दात्'– (4–4–1) आदि सूत्र श्रीवल्लभाचार्य के इस अविर्भाव तथा तिरोभाव के सिद्धान्त के आधार प्रतीत होते हैं। आचार्य के इस सिद्धान्त से ब्रह्म का परिणाम जगत मिथ्या नहीं, बल्कि सत् है। ब्रह्म का परिणाम नामरुपात्मक जगत वैसे ही ब्रह्म से अनन्य या अभिन्न है, जैसे मिट्टी तथा उससे निर्मित पात्र आदि या सोने और उससे निर्मित हार,कुण्डल आदि गहने अपने निर्माणसामग्री सामग्री क्रमसः मिट्टी या सोने से अनन्य अथवा अभिन्न होते हैं। इसी प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि वल्लभाचार्य ने 'स यथोर्णनाभिः ....यथाग्नेः क्षुद्राः विस्फुलिंगाः..–बृहदारण्यकोपनि02–1–20 'तदेतत्सत्यं यथा सुदीप्तात्पावकाद्विस्फुलिंगाः.'.मुण्डकोपनि0.2–1–1 आदि श्रुतियों तथा ब्रह्मसूत्र के 'अंशो नानाव्यपदेशादन्यथा...' ब्रह्मसूत्र 2–3–43 आदि के निहितार्थ के आधार पर अर्थात अग्नि की चिनगारियो के समान जीव को ब्रह्म का वास्तिविक अंश होने के साथ साथ उन्हें बहुत एवं अलग अलग माना है। इसके साथ ही उन्होंने ज्ञान तथा भक्ति का समुच्चयकर एवं श्रीरामानुज एवं निम्बार्क आदि की तरह जीवों को अणुरूप मानकर अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन किया एवं इसी से ब्रह्मसूत्र पर उनके भाष्य को अणुभाष्य भी कहा जाता है। उनके अनुसार श्रुतियों में कहीं कहीं जीव को जो ब्रह्म के समान विभु कहा गया है, वह ब्रह्मभाव की दशा में उसकी ब्रह्म से तात्विक ऐक्य या अभिन्नता अथवा अनन्यता अनुभव करने को लेकर है, न कि जीवों के स्वयं ब्रह्मरुप भूमा हो जाने का अभिमत। श्रुतियों का अभिप्राय यह है कि जीव ब्रह्म से तो अनन्य अवश्य है, परन्तु ब्रह्म से भिन्न भी है। स्वर्ण से बने गहने भिन्न भिन्न होने पर भी स्वर्ण से अनन्य तो होते ही हैं। इसी प्रकार जीव ब्रह्म से अनन्य है, परन्तु 'अधिकं तु भेदनिर्देशात्(ब्रह्मसूत्र 2–1–22) के अनुसार ब्रह्म अधिक है, इसका भेद तो जीव और ब्रह्म में बना ही रहता है, भले जीव मुक्त ही क्यों न हो गया हो। श्रुति,वेदान्तादि के निहितार्थानुसार मुक्त जीव ब्रह्म के अपरिमित ज्ञानानन्द में भागी होते हैं। परन्तु उन्हें भगवान की तरह लोकसृष्टि एवं संहार की शक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। सही है तात्विक ऐक्य के बावजूद समुद्र की बून्द अपने को समुद्र कैसे कहे। अद्वैतसिद्धान्त शिरोमणि शंकराचार्य भी तो कहते हैं 'आप में और मुझमें यद्यपि रंचमात्र भी अंतर नहीं है, स्वामी! फिर भी यह मैं हूँ जो आपका यानि आपके कारण हूँ आप मेरा या मेरे  कारण नहीं हैं, ठीक उसी तरह जैसे लहर समुद्र की यानि समुद्र के कारण होती है,समुद्र लहर का अथवा लहर के कारण नहीं होता।' वल्लभाचार्य ने भी श्रीरामानुजाचार्य की तरह श्रुतियों एवं अपनी युक्तियों के आधार पर जीव को ज्ञाता माना है, न कि शंकराचार्य की तरह ज्ञानस्वरूप। दार्शनिक क्षेत्र में इस 'शुद्धाद्वैत' दर्शन के महनीय देन के साथ ही भक्ति के क्षेत्र में वल्लभाचार्य का 'पुष्टिमार्ग' तो भक्ति का मुकुटमणि ही है। उनका मत है कि भगवान के अनुग्रह से ही जीव की वास्तविक पुष्टि या पोषण होता है। इन्होंने जीव में भक्ति के आविर्भाव को भगवान का अनुग्रह या पोषण माना है। जिसमें सच्ची भक्ति आ गयी, समझिये उसे भगवान का अनुग्रह या पोषण मिल गया। आचार्य का यह पुष्टिमार्ग स्त्री,पुरूष,ब्राह्मण,शुद्र सबके लिए खुला है। इस पुष्टिमार्ग में साधना का स्वरूप शुद्ध प्रेम है, और कुछ नहीं। आचार्य द्वारा मनुष्य के लिए कहे गये तीन मार्गो यथा मर्यादामार्ग (केवल वेद प्रतिपादित कर्म तथा ज्ञान का सम्पादन), प्रवाहमार्ग(सांसारिक सुख–भोग हेतु प्रयत्न) तथा पुष्टिमार्ग में से सिर्फ पुष्टिमार्ग ही सांसारिक जीव को सच्चा सुख दे सकता है, जो वस्तुतः भगवान द्वारा प्रदत्त पोषण या अनुग्रह है। अपने प्रकरण ग्रन्थ 'पुष्टिप्रवाहमर्यादा' में आचार्य ने इन तीनो मार्गों के अनुरूप तीन प्रकार के जीवों–पुष्टिजीव, मर्यादाजीव एवं प्रवाहजीव के साथ ही प्रवाहजीवों को असुर कहकर उनके दुर्ज्ञ तथा अज्ञ भेद किये हैं। आचार्य ने अज्ञों का असुरत्व अच्छे संस्कार प्राप्त होने पर दूर होने, परन्तु दुर्ज्ञों की अन्तःप्रकुति ही आसुरी होने से उन्हें मायिक रहने एवं माया में ही लीन होते रहना माना है। आचार्य के दर्शन एवं



www.bhojpurisahityangan.com

अत्योत्तम भक्तिरसायन से सान्द्रित,श्रीकृष्णपदाब्ज के पुष्टिदायिनी सुरभि से सुरभित–पुष्टिमार्ग की विशद जानकारी उनके ग्रन्थों यथा पूर्वमीमांसा भाष्य, अणुभाष्य नाम से प्रसिद्ध उत्तरमीमांसा या ब्रह्मसूत्रभाष्य एवं पुष्टिप्रवाहमर्यादा आदि प्रकरणग्रन्थों के अनुशीलन से प्राप्त की जा सकती है।

अब भगवान श्रीकृष्ण की बाललीला,गोपीशृंगार,माधुर्य एवं कृष्ण के मथुरा प्रवास के बाद अपने प्रियतम के विरहभाव का तत्समय बहुधा बोलचाल में प्रयुक्त ब्रजभाषा के अत्यंत हृदयावर्जक पदों में अप्रतिम चित्रण करनेवाले सूरजदास या सूरदास की काव्य प्रतिभा वा काव्य प्रगल्भता की संक्षिप्त बात यहाँ आवश्यक जान पड़ती है। सूरदास वल्लभाचार्य के शिष्य थे। उन्होंने भागवतीय श्रीकृष्णलीला में से भगवान के वात्सल्य एवं गोपी–कृष्ण के प्रेमोद्रेक व प्रेमोत्कर्ष को ही अपनी लोकानुरंजिनी लेखनी का विषय बनाया। सूरदास नामक आलोचना ग्रन्थ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल सूरदास के काव्य सूरसागर को तत्समय बोलचाल में प्रयुक्त व्रजभाषा की सबसे पहली रचना होने का अभिमत व्यक्त करते हुए कहते हैं कि यह रचना इतनी सुडौल,परिमार्जित,प्रगल्भ एवं काव्यांगपूर्ण है कि आगे होनेवाले कवियों की शृंगार और वात्सल्य की उक्तियाँ सूरदास की जूठी जान पड़ती हैं। आचार्य का सूरकाव्यावलोकन सूरदास के शृंगार एवं वात्सल्य रसभिव्यन्जना को रसमय काव्यक्षेत्र के उस मूर्धन्य शिखर पर प्रतिष्ठित मानता है, जहाँ किसी कवि की दृष्टि नहीं पहुँची। सूरदास का श्रीकृष्ण की वात्सल्यलीला एवं गोपी शृंगार–विरह के कोमल–कमनीय भावों से सान्द्रित सूरसागररुपी रसोद्रेक काव्यक्षेत्र में सचमुच वह अद्वितीय रसोदधि है जिसमें जो सहृदयी प्रविष्ट हुआ उसे दुसरे किसी काव्यसरिता में अवगाहन आनन्दप्रद क्या, फीका एवं अरुचिकर लगना एकदम स्वाभाविक है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार सूरदास की वात्सल्य और शृंगार, प्रेम–विरह नवान्वेषी रसाभिसिक्त दृष्टि और उससे अनुप्रेरित उनकी लेखनी उनके हृदयस्थ भावों की ऐसी प्रसूता हुई कि अष्टछाप के कविगण क्या, भक्तिभावप्रासाद पर शिखरासीन तुलसीदास भी भगवान के वात्सल्य, शृंगार, प्रेम एवं विरहोद्रेक की सूरदासीय भावाभिव्यंजना को स्पर्श करते नहीं दिखते। लेकिन यह भी सही है कि तुलसीदास की तरह सूरदास की दृष्टि ज्ञान–भक्ति समुच्चय,लोकमंगल, आध्यात्मिक लोकाकांक्षा के अनुरुप समन्वयात्मक भावोद्रेक पर नहीं गयी। तुलसीदास ने राम को व्यक्तिगत भक्त्यानुराग तक सीमित नहीं किया,बल्कि तुलसी के राम संसार में राक्षसरुपी पूर्वाग्रही अतिवदियों एवं अत्याचारियों का दमन कर श्रुति–शास्त्रानुसम्मत वर्णाश्रम, लोक–व्यवस्था,लोक–मंगल को सुनिश्चित व सुस्थापित करते हैं। तुलसी के राम त्याग,आत्म–बलिदान एवं आत्मसंतोष को स्वयं जीते हैं तथा दुसरों से अपने किये का प्रत्युपकार नहीं चाहकर देवतादि से भी उपर मानव–सद्‌गुगों की प्रतिष्ठा करते हैं। हनुमान द्वारा सफलतापूर्वक सीतान्वेषण कर सीताविरहाग्नि में जलते श्रीराम को सूचित करने पर वे वाल्मीकि के शब्दों में कहते हैं–'' मय्येव जीर्णतां यातु यत् त्वयोपकृतं हरे। नरः प्रत्युपकारार्थी विपत्तिमभिकांक्षति।। अर्थात हे हनुमान सीता का पता लगाकर आपने मेरे उपर जो उपकार किया है वह मेरे में ही जीर्ण,विलीन हो जाय,कभी उसके प्रति मुझमें तुम पर उसके निराकरण–प्रत्युपकार के लिए तुम्हें विपत्तिग्रस्त होने की भावना न जगे, क्योंकि मनुष्य उपकार का बदला चुकाने के लिए उपकारी पर विपत्ति आने की कामना करता है। ऐसी उदात्त भावना तुलसी और वाल्मीकि के राम में ही देखने को मिलती है,अन्य में नहीं। अस्तु! तुलसीदास एवं सूरदास के काव्यादर्श तत्वतः एक श्रीहरि के रहने पर भी दोनों की अपनी अपनी आस्था–प्रेमानुरुप भावाभिव्यक्ति एवं काव्य–व्यन्जना अपने चरम स्वरुप–लक्ष्य को स्थापित करने में पूर्णतः सफल दिखती है।

गोपियों के अप्रतिम प्रेमाभक्त्यानुरंजित श्रीकृष्णरुपी मंजिल की ओर जानेवाली प्रेम–भक्ति यात्रा के विश्रुत मार्ग में बंगाल के नवद्वीप या नादिया गाँव में एक ब्राह्मण परिवार में जन्मे चैतन्यमहाप्रभु(1486–1534ई0), जिनके बचपन का नाम विश्वम्भर एवं निमाई या निताई था, का उल्लेख कैसे विस्मृत हो सकता है। श्रीचैतन्य बचपन से ही कृष्णानुरागी थे। बिहार के गया में ईश्वरपुरी नामक संत के सम्पर्क में आकर ये सर्वतोभावेन भगवान कृष्ण के होकर रह गये और नृत्य–वाद्य–गीतादि विधा को अपनाकर ये आजीवन हरिनाम संकीर्तन करते रहे। मात्र 24 वर्ष की आयु में इन्होंने गृहस्थ जीवन छोड़कर केशव भारती नामक संत से सन्यास दीक्षा लेने के बाद जगन्नाथपुरी में भगवान के प्रेम–भक्ति में नाचते गाते मूर्छित तक हो जाते थे। कहा जाता है कि ये श्रीरंगम,कांची,शृंगेरी,द्वारिका आदि तीर्थों में ''स्वविन्यसित तारकब्रह्ममहामंत्र–हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे,हरे राम हरे राम राम राम



www.bhojpurisahityangan.com

हरे हरे।'' द्वारा लोगों को भगवद्नाम संकीर्तन से सराबोर करने के बाद वृन्दावन आकर अपने कुछ प्रमुख शिष्यों–रूप गोस्वामी,सनातन गोस्वामी एवं जीव गोस्वामी आदि को भगवान के दिव्यलीला स्थलियों की खोजकर विकसित करने का संकेत दिया। इसमें संदेह नहीं कि आज का वृन्दावन गौरांग महाप्रभु एवं उनके षण्गोस्वामियों के भक्तिमय अथक परिश्रम का प्रतिफल है। महाप्रभु गौरांग भगवान जगन्नाथ की सन्निधि में रहते हुए महज 47 वर्ष की आयु में भगवान के नित्यलीलाविहार गोलोकधाम पधार गये। कुछ विद्वान महाप्रभु की कीर्त्तनादि करते मूर्छादि द्वारा ईश्वरभावोपलब्धि सूफियों से प्रभावित मानते हैं। पर इस विषय में अन्य भागवतों एवं चिंतकों की तरह सांगोपांग चिंतन के फलस्वरूप मेरा भी यह मानना है कि जब सच्चे भक्तों का अपने इष्ट के प्रेम में उन्मत्तता, मूर्छादि चेतना की पराभूमि में स्वतःस्फूर्त होती है और सूफी आदि अन्य की भी निराकार परमसत्ता में होनी सुनी जाती है, तो इनसे चैतन्य महाप्रभु या अनगिनत अन्य की इन प्रेमलक्षणा भक्त्यावस्थादि को किसी से प्रभावित मानना कहाँ तक उचित है। सत्य तो यह है कि शाहजहाँ के उपनिषदनुरागी बेटे दाराशिकोह के द्वारा उपनिषदों के फारसी में अनुवाद एवं संकलन के पश्चात स्वयं उन्हें सम्पादित कर उसे 'सिर्रे अकबर' नामक किताब के रूप में पेश करने के बाद लगभग पूरा विश्व, विशेषरूप से यूरोप में फ्रांस, जर्मनी एवं ब्रिटेन, किसी न किसी रूप में उससे अत्यधिक प्रभावित हुए। प्रसंगवश यहाँ उल्लेख्य है कि शाहजहाँपुत्र दाराशिकोह द्वारा संकलित एवं संपादित सिर्रे अकबर नामक उपनिषदों के फारसी संकलन को अयोध्या नवाब सुजाउद्दौला के दरबार में फरसी रेजिडेंट एम0 गेण्टिल द्वारा फ्रेंच पर्यटक एंक्वेंटिल डुपेरन को 1775 में सुपुर्द किये जाने पर एवं सिर्रे अकबर के डुपेरनकृत लैटिन संस्करण के जर्मन में अनुदित होने पर प्राच्यविद्या प्रेमी जर्मन विद्वान वेबर महोदय ने 1850 में सिर्रे अकबर के प्रथम चौदह उपनिषदगंन्थों को श्लाघ्य शुद्धता के साथ संपादित कर बर्लिन से प्रकाशित किया। इसके बाद तो उपनिषदों का विश्वानुनादी डंका बजने लगा। अस्तु! इस प्रकार उपनिषदों के संस्कृतेतर संस्करण से मुसलमान फकीर एवं सूफी भी अत्यधिक प्रभावित हुए एवं उपनिषदों का अद्वैत व निराकार प्रेमानुराग उनकी धर्मास्था के अनुरूप ईश्वरप्रेमोन्माद के रूप में और अधिक दृष्टिगोचर एवं विश्रुत हुआ। श्री चैतन्य महाप्रभु ने स्वयं किसी ग्रन्थ का प्रणयन नहीं किया। उनके शिष्य परमभक्त–ज्ञानी श्रीरूप गोस्वामी ने उज्जवल नीलमणि एवं भक्तिरसामृत–सिन्धु की रचना की, जिस पर श्रीजीव गोस्वामी ने उक्त दोनों ग्रन्थों पर टीका लिखी तथा स्वयं सत्सन्दर्भ में उसकी टीका 'सर्वसम्वादिनी' का प्रणयन किया। श्रीबलदेव विद्याभूषण ने ब्रह्मसूत्र पर गोविन्दभाष्य नामक ग्रन्थ लिखा जो बलदेवभाष्य के रूप में भी विश्रुत है। इस प्रकार सर्वश्री रूप,जीव तथा बलदेव आदि महाप्रभुओं ने श्रुतियों एवं भागवत पर आधारित चैतन्यमहाप्रभु के तत्वचिंतन एवं धार्मिक विचारों को दार्शनिक स्वरूप दिया, जो कई सन्दर्भों में मध्व के दार्शनिक चिंतन से साम्य रखते हैं। इसीलिए महाप्रभु के दार्शनिक विचार को मध्व–गौड़ीय वेदान्तशाखा कहा जाता है। इसके अनुसार वस्तुतः सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण ही परमब्रह्म हैं। श्रीकृष्ण अनन्त शुभगुणों एवं शक्ति के शाश्वतधाम हैं। वे यद्यपि स्वगत,सजातीय तथा विजातीय सभी भेदों से रहित हैं, फिर भी वे जीव एवं जगत के रूप में अपने को ही सत्यरूप में प्रकट करते हैं। उनकी ये शक्तियाँ यद्यपि उनसे जहाँ अभिन्न हैं, वहीं उनसे भिन्न भी हैं। वे अपने निजस्वरूप में विश्व के निमित्त कारण हैं, वहीं अपनी शक्तियों के रूप में जगत् का उपादान कारण हैं। उनकी अन्तरंगास्वरूप शक्ति तीन रूपों में प्रकट होती है–सन्धिनी सत् या अस्तित्व का, संवित् चित या ज्ञान का तथा ह्लादिनी आनन्द का प्रतिनिधित्व करती है। गोपियों की तरह भगवान की प्रेमलक्षणा शुद्धभक्ति अर्थात् रूचि या रागानुगाभक्ति से ही जीवों को मुक्ति मिल सकती है। इसी भक्ति–प्रेमप्रवाह में पूर्वी भारत के बंगाल, उत्कल या उड़ीसा, मिथिला आदि क्षेत्रों में जयदेव,विद्यापति प्रभृति विद्वानों ने भगवान के लीला–माधुर्य को लक्ष्यकर अपनी कई रचनाओं से भक्ति–सरिता को प्रपूरित किया। बंगाल के राजा लक्ष्मणसेन(12वीं शदी) के सभाविद्वान जयदेव ने गीत–गोविन्द की रचना कर कृष्ण की प्रेम–भक्ति का अनुपम भावप्रवर उपहार कृष्ण–भक्तों के लिए प्रस्तुत किया। जयदेव की इस सुमधुर रचना की अनुकृति स्वरूप परवर्ती विद्वानों की कई रचनाएँ आईं जिनमें गीतराघव, जानकीगीता, संगीतरघुनन्दन आदि विश्रुत हैं।

बिहार के मधुबनी जिला के बिपसी में जन्मे विद्यापति ( 15वीं शदी) ने मिथिला के कई राजाओं के संरक्षण में संस्कृत,अवहट्ठ एवं मैथिली में श्रृंगार एवं भक्ति की कई रचनाओं से भारतीय वाङ्मय की श्रीवृद्धि की, जिनमें से संस्कृत की शैवसर्वस्वसार, दुर्गाभक्ति तरंगिणी,गंगावाक्यावली आदि,अवहट्ठ की 'कीर्तिलता,कीर्तिपताका' तथा मैथिली की 'पदावली' आदि की ख्याति सर्वविदित है।



www.bhojpurisahityangan.com

अब संक्षेपतः आधुनिक युग में भारतीय तत्वमीमांसा (Metaphysics) एवं चिंतन को उपनिषदों के दर्शन के आलोक में अपने ऋषितुल्य आध्यात्मिक जीवन में सतत स्वाध्यायरुपी तपस्चर्या से स्वानुभूत तथ्यों को प्राच्य एवं पाश्चात्य दार्शनिक विमर्श के पुट के साथ व्यन्जित करनेवाले आधुनिक युग के द्रष्टा व मनीषी श्री अरबिन्दो के दार्शनिक अवदान की भी बात करना भगवान श्रीकृष्ण के ज्ञान–विग्रह की वाङ्मयी उपासना होगी। श्रीअरबिन्दो ने जिस ऋषिकल्प जीवन को जीया और जिसे केवल वाग्व्यवहार एवं व्यक्तिगत उपासना तक सीमित नहीं कर प्राचीन भारतीय वाङ्मय–वेदों,उपनिषदों आदि एवं उनके ऋषियों–मनीषियों से लेकर मध्यकाल एवं समसामयिक–आधुनिक काल तक मुकुलित,पल्लवित एवं पुष्पित दर्शन–तत्वमीमांसा एवं ज्ञान मीमांसा के तत्वों को अपनी तपःपूत आध्यात्मिक चिंतन के रुप में अपने मानस में प्रतिबिम्बित किया, उसे 'The Divine Life'–'दिव्य जीवन' नामक अपने आध्यात्मिक सृजन के रुप में प्रस्तुत किया। ऐसा कर सचमुच उन्होंने भारतीय एवं पाश्चात्य दर्शन–अध्येताओं,विद्वानों की उस सोच को विपरिलोपित कर दिया कि भारतीय दार्शनिक परम्परा पर सोलहवी सदी के बाद विराम लग गया। श्री अरबिन्दो घोष ने भारत की आजादी की वाङ्मयी चेतना के साथ तत्कालीन फ्रेंच आधिपत्य के पॉन्डिचेरी में जिस ऋषिकल्प चिंतन को जीया और जिसे अपने मानस–सरोवर में पुण्डरीकाक्ष श्रीहरि के सृजन–सजल–पाण्डुर–रक्ताभ नेत्रों की सुषुमा–सौन्दर्य से विकसित अरविन्ददलों के सुरभिकेन्द्र में अपनी निजी आध्यात्मिक अनुभूतियों को सुरभि–परागकणों के रुप में प्रकीर्णित किया, उसी तपःपूत तत्व–चिंतनरुप वाङ्मयारविन्द–प्रसूनस्रग् की सुरभि से सुगन्धित 'The Divine Life'–'दिव्य जीवन' में श्री अरबिन्दो कहते हैं–ब्रह्म परम सत्य है,वह दिव्य है,शाश्वत है,निरपेक्ष है और अनन्त है। वे यह भी कहते हैं कि ब्रह्म का निर्वचन,विधिमुख 'positively या निषेधमुख negatively'इन दोनों विधाओं में से किसी के द्वारा पूर्णतः नहीं किया जा सकता है। फिर वे कहते हैं कि ब्रह्म यद्यपि अपने आप में अवर्णनीय है, तब भी वह हमारे लिए पूर्णतः अविज्ञेय नहीं है। क्योंकि हम सभी के अन्तःकरण–अन्तरात्मा में अन्तर्यामी,साक्षी रुप से आखिर वही दिव्य ब्रह्म ही तो बैठा हुआ है। ब्रह्म का 'सच्चिदानन्द' स्वरुप–Existence-conciousness-Bliss हमारे लिए उसका उच्चतम प्रकटीकरण expression है। वह एक साथ साकार–निराकार,सगुण–निर्गुण,एक,अनेक,भूत,वर्तमान,भाव्य भी है और इन सबसे परे भी है। श्री अरबिन्दो के अनुसार ब्रह्म का सत् हमें आत्मा,ईश्वर और पुरुष के रुप में प्रतीत होता है, उसका चित् हमें उसकी शक्ति,माया और प्रकृति के रुप में प्रतीत होता है, जो अपरिमित को परिमित,अरुप को रुप तथा आत्मा (spirit) को शरीरधारी (embodied) बनाता है। ब्रह्म का आनन्द सभी व्यक्त अस्तित्वों में अन्तस्थ है और अपने इसी आनन्द से वह संसार के रुप में अपने को व्यक्त किए हुए है। जैसी कि तैत्तिरीय श्रुति का उद्घोष है''आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्। आनन्दाद्धयेव खल्विमानि भूतानि जायन्ते.......तैत्तिरी0 4–6–1'', उसी तरह श्री अरबिन्दो कहते हैं–संसार का उत्स,स्थिति,अस्तित्व,व्यक्ताव्यक्त भाव आदि अपनी माया–चित् शक्ति के द्वारा, अपनी आनन्दरुपी लीला मात्र से, सच्चिदानन्द ब्रह्मरुप शिव का वह दिव्य आनन्दप्रपूरित नृत्य है, जो ईश्वर के शरीर को अनन्तरुप में विस्तारित,गुणित कर प्रकट करता है। और उस नृत्योद्भूत पाण्डुर–श्वेत जागतिक अस्तित्व, जो पूर्वकल्प में जैसा था, सदा जैसे रहता है एवं जैसे रहेगा, को वह ठीक वहीं और वैसे ही रखता है और इसका एकमात्र उद्देश्य उसका नृत्यानन्द है। सर्वोच्च सत्तारुपी ब्रह्म अपने आप में दिक्–काल परे विशुद्ध अस्तित्व है। वह एक है, अच्युत है, जो माप तथा मापरहितता दोनों से परे है। लेकिन तब भी वह स्वयं को दिक्–काल में मापरहित अस्तित्व के रुप में प्रकट करता है। श्री अरबिन्दो फिर आगे ब्रह्म के आत्मचैतन्य, जो अपने आप में उसके आत्म अभिव्यक्ति की शक्ति है, को अतिमनस् (supermind) कहते हैं। ब्रह्म का यह अतिमनस् उसकी अखिल वस्तु–रुप निर्माणधर्मिता का सत्य प्रत्यय एवं सत्य चैतन्य है और जिसके द्वारा वह अपने अविनाशी एवं अ–अन्तरणीय तत्व(Non- mutable substance) को विभिन्न अन्तरणीय वस्तुजात के रुप में प्रक्षिप्त करता है। श्री अरबिन्दो उपनिषदों की ज्ञानधारा में अपने को प्रवाहमान करते हुए कहते हैं कि अकेले यह वह दिव्य ही है जो अपने को अपने सभी पहलूओं में सम्पूर्णतः जानता है और वह अतिमनस् (supermind) उसके स्वयं का ज्ञान है, जिसकी शक्ति द्वारा वह अपने को संसार के रुप में सद्यः प्रकट कर लेता है। वह असीमित एवं विभु ब्रह्म अपना सीमितीकरण (limitation) एवं व्यक्तिकरण (invidualization ) अपने उसी अतिमनस् (supermind) की प्रक्रिया के तहत करता है। असंख्य एवं सत्यस्वरुप जीवात्मा उस ब्रह्म के ही आनन्द का प्रकटीकरण हैं, जिन्हें सच्चिदानन्द के साथ अपने ऐक्य के अपरिहार्य चैतन्य का स्मरण सदैव बना रहता है। इस प्रकार सच्चिदानन्द ब्रह्म अपने



www.bhojpurisahityangan.com

अतिमनस् (supermind) द्वारा मन, जीवन तथा अचित् पदार्थ के रुप में अपना अवतरण या अवरोह(involution) करता है और अतिमनस(supermind) के 'मन' के स्तर पर आते ही अपने सच्चिदानन्दस्वरुप के ज्ञान की स्मृति तिरोहित हो जाने से मन अविद्या का पर्याय बन जाता है। और यही अविद्यारुप मन विश्व का प्राकट्य करता है। अतिमनस (supermind) के मनीकरण (involution of supermind) के तहत ब्रह्म के सर्जना,गोप्तत्व तथा विसरण की स्वान्तस्थ प्रक्रिया का अंत नहीं है। इस प्रक्रिया के दुसरे चरण में आत्मा का अपने कम अभिव्यक्त स्तर से उच्चतर स्तर तक जाने को श्री अरबिन्दो उसका विकास या उत्क्रमण कहते हैं, जो निम्नतर की आवाज पर उच्चतर के ज्ञानरुप जवाब से व्युत्पन्न, निम्नतर का उच्चतर के साथ समन्वय है। श्री अरबिन्दो के अनुसार अतिमनस् (supermind) का, मन–शरीरादि एवं अचित् स्तर तक, अवरोह (involution) तार्किक आवयश्कता है, जो अपने ही अतिमनस् द्वारा अपने को ही मानव के स्तर पर सीमित किये हुए अस्तित्व के लिए अपने असीमित सच्चिदानन्द ब्रह्मस्वरुप की अब तक अज्ञात सर्जना से अवगत होने का अवसर प्रदान करता है। और तब यही अवसर मनुष्य को उपनिषद् प्रशस्त 'इहैव' और 'अधुनैव' उद्घोष से उर्जित कर 'यहाँ ही' तथा 'अभी ही' प्राप्तव्य वैश्विक मुक्ति की ओर ले जाता है। श्री अरबिन्दो का 'दिव्य जीवन' (Divine Life) उनके ज्ञान–मीमांसा एवं तत्व मीमांसारुप दार्शनिक विचारों का उपनिषद्–विद्या प्रशस्त अभिव्यक्तीकरण मात्र ही नहीं है, अपितु वह उपनिषदों के तत्वचिंतन को स्वयं द्वारा आत्मसात कर उसे स्वयं द्वारा जीये गये उन विराट अनुभूतियों का प्रकटीकरण है, जिससे प्राच्यविद्या–क्षितिज जितना देदीप्यमान है उतना, किम्वा शायद कुछ अधिक ही, विश्वज्ञान क्षितिज भी उद्भासित और अनुप्रेरित है।

द्वापर–कलियुग की संधि से लेकर सातवीं–आठवीं शताब्दी तक दक्षिण भारत के तमिलनाडु क्षेत्र में विष्णु या नारायण की अनन्यभक्ति करनेवाले तमिल भागवतों, जिन्हें आलवार कहते हैं, ने विष्णुभक्ति की सहज एवं अव्यभिचारी धारा से भक्तिक्षेत्र के साथ साथ तमिलभाषा को भी खूब सींचा। यद्यपि इस प्रबन्धकाव्य की भूमिका में वर्ण्यविषय का प्रसंगवश विस्तार कुछ अधिक होगा, परन्तु अब जबकि ज्ञान–प्रेम–भक्ति के परमाधार एवं इस महाकाव्य के नायक पुरूषोत्तम श्रीकृष्ण के ज्ञान–प्रेम–भक्ति स्वरुप एवं उनकी अकल्मष प्रेमकथा पर बात चल ही रही है तो मैं अपने परमाचार्य श्रीरामानुजाचार्य सहित उनके परमाराध्य आलवारों एवं उनके पूर्वाचार्यो के पावन चरित एवं उनकी अत्युत्त्मा विष्णुभक्तिवृत्त की संक्षेप में चर्चा किये बिना कहाँ रह सकता हूँ।

अस्तु! द्वापर या महाभारतयुग में गोपियों के निर्मल हृदय में उत्कर्ष को प्राप्त हुई कृष्ण प्रेम–भक्ति ने कलियुग में पुनः भारत के दक्षिण या द्रविण भूभाग में इन विष्णुभक्त आलवारों के क्रोडस्थ हृदय को अपना पवित्र प्रस्थान बनाया। भागवत माहात्म्य में भी द्रविण–देश यानि दक्षिण भारत को भक्ति का उत्स माना गया है। पोयगै, भूतत्त, पेय, तिरूमलिसै, नम्मा, मधुरकवि, केरलनरेश कुलशेखर, पेरिय, आण्डाल या गोदा, तोण्डरडिप्पोड़िय, तिरूप्पान और तिरूमंगै ये बारह तमिल विष्णुभक्त आलवार आध्यात्मिक ज्ञान एवं भक्ति के सिंधु थे। इन्होंने भगवान की अप्रतिम एवं रसाभिषिक्त भक्ति में लीन रहकर अपने हृदयोद्गार की व्यन्जना जनभाषा तमिल में अत्यंत सरस पदों के रूप में की। इनका संकलन नलायिर दिव्यप्रबंध कहा जाता है जिसमें 4000 तमिल पद्य रचनाएँ हैं। श्रीवैष्णव सम्प्रदाय में नलायिर दिव्यप्रबंध को तमिलवेद की आख्या प्राप्त है और इस तमिलवेद के साथ संस्कृतवेद के ज्ञाता श्रीवैष्णव विद्वान उभयवेदान्ती भी कहे जाते हैं। ये आलवार विष्णुभगवान के अंश या उनके विभिन्न अंगों,आयुधों,शंख,चक्र,गदा,पद्म एवं वाहनादि के अवतार माने जाते हैं। इन आलवारों में पोयगै आलवार भगवान के पांचजन्य नामक शंख के अवतार माने गये हैं। इनका प्रादुर्भाव तमिलनाडु के कांची नगर में एक स्वर्णपद्म से हुआ कहा जाता है। कांची के देवसरोवर के जल में विद्यमान मन्दिर में ध्यानमुद्रा में लेटी इनकी मूर्ति के कारण इनकी वंदना सरोयोगि के नाम से भी की गई है। इसी प्रकार भूत या भूतत्त आलवार भगवान विष्णु के कौमोदकी गदांश माने गये हैं। पेय आलवार भगवान के खड्गावतार कहे जाते हैं। ये श्रीहरि के प्रेम में सदैव उन्मत्त रहा करते थे,इसी से ये पेय आलवार कहे जाने लगे। तिरूमलिशै आलवार भगवान के चक्रांश माने गये हैं। भगवान के प्रधान सेनापति विष्वकसेन के अवतार शठारि या शठकोप आलवार अपने स्वभाव की मधुरता एवं मिलनसारिता के चलते 'आत्मीय' यानि नम्मा–आलवार या 'हमारे आलवार' भी कहे जाते थे। मोहरूप गज का अंकुश होने से इन्हें परांकुशमुनि भी कहा जाता है। इनके एक भक्त तमिलभाषा में मधुर कविताएँ लिखते थे,इससे



www.bhojpurisahityangan.com

इन्हें मधुरकवि आलवार कहा जाता है। इसी प्रकार श्रीविष्णु के कौस्तुभ मणि के अंश से सम्भूत केरल, मालाबार के राजा कुलशेखर भगवान के परमश्रेष्ठ भक्तों में शुमार होते हैं। राजा होने के बावजूद भगवान के प्रति इनकी विरज एवं अनन्य भक्ति इन्हें तमिलभक्त आलवारों की श्रेणी में देदीप्यमान करती है। इन्होंने राजर्षि की तरह शासन किया। इनकी रचना 'मुकुन्दमाला–स्तोत्र' संस्कृत सहित्य की अमोल निधि है।

श्रीविष्णु के रथांश से उत्पन्न पेरिय आलवार, जिन्हें विष्णुचित्त कहा जाता है, त्रिचिरापल्ली–श्रीरंगम् स्थित भगवान श्रीरंगनाथजी की तुलसी सेवा करते थे। भगवान के माला हेतु तुलसी पत्रों को चुनने के क्रम में तुलसी के बागीचे में इन्हें एक नन्हीं बालिका मिली। श्रीविष्णुचित्त स्वामी निःसंतान थे,अतः इस बालिका को अपनी बेटी मानकर लालन–पालन करले लगे। इन्होंने बलिका का नाम आण्डाल रखा। आण्डाल श्रीनारायणविग्रह की सेवा में ही लगी रहती,वह अन्य बच्चों के समान खेलती भी नहीं थी। कुछ बड़ी होने पर कहने लगी 'मैं तो नारायण श्रीरंगनाथजी से ही विवाह करूंगी।' एक दिन भगवान को लगाने के लिए तुलसीमाला को आण्डाल या गोदा द्वारा पहना हुआ देख विष्णुचित्त स्वामी ने भगवान को वह माला नहीं पहनायी। उसी रात भगवान ने स्वप्न में विष्णुचित्त स्वामी को कहा कि ''तुमने आज तुलसीमाला मुझे क्यों नहीं पहनाई? मैं अपने भक्तों से स्पृष्ट वस्तु से और भी प्रसन्न होता हूँ। अपनी बेटी आण्डाल को मनुजोद्भूत मत समझना''। सवेरा होने पर विष्णुचित्त स्वामी ने देखा कि वह तुलसीमाला पहले से भी और तरो–ताजी है। तब उन्होंने वही माला बेझिझक भगवान के गले में डाल दी और अपने नेत्रों से भक्ति–प्रेमजनित अश्रुपात करते हुए भगवान के प्रेम में निमग्न हो गये। जब वे आण्डाल के विवाह हेतु चिंतित रहने लगे तो एक रात विष्णु श्रीरंगनाथजी ने उन्हें स्वप्न में कहा ''आण्डाल साक्षात लक्ष्मी है,उसका हाथ मुझे देने में कोई शंका मत करना।'' उसी रात श्रीरंगनाथजी के पुजारी को भी भगवान ने कहा कि ''तुम सवेरे विवाह की सामग्री लेकर विष्णुचित्तस्वामी के घर जाना तथा आण्डाल को वैवाहिक कन्या की तरह सुसज्जित कर पालकी में मन्दिर में लाना। पुजारी द्वारा भगवदादिष्ट सारे प्रबंध कर विष्णुचित्तस्वामी को सूचित किया गया। विष्णुचित्त स्वामी आनन्दातिरेक से अश्रुपात करने लगे। वहाँ की जनता भी उस दिव्य विवाहोत्सव में शामिल हुई। मंदिर के गर्भ में जाने पर श्रीमन्नारायण श्री श्रीरंगनाथ ने हाथ बढ़ाकर दुल्हनवेष में सजी आण्डाल का जैसे ही आलिंगन किया,आण्डाल द्रवीभूत होकर भगवान के विग्रह में समा गयीं। आण्डाल के पिता विष्णुचित्त स्वामी से भगवान ने कहा ''आज से आप मेरे श्वसुर हुए। आपकी कन्या सदैव मुझमें वास करेंगी।'' आण्डाल या गोदा वस्तुतः श्रीलक्ष्मी द्वारा अपने को तीन रूपों–श्रीदेवी,भूदेवी एवं नीलादेवी में विभक्त करने वाली उनकी नीलादेवीस्वरूपा हैं। इनकी गणना भी भगवान के आलवार भक्तों में होती है। अपने पासुरों या पदों द्वारा श्रीविष्णु की अव्यभिचारिणी भक्ति को प्रवाहमान करनेवाले चार हजार पदों के संकलन नलायिर नामक तमिल दिव्यप्रबंध में भगवान श्रीरंगनाथ की इन पराप्रेयसी श्रीरंगनायकी गोदाजी के भी पद–पासुर शामिल हैं। आर्षपरम्परा में उपबृंहित कई ग्रन्थों में नीलादेवी आख्याधृता श्रीलक्ष्मी ही श्रीकृष्ण की ब्रजलीलावधि में उनकी पराप्रेयसी बृषभानुनन्दिनी श्रीराधा के रूप में समादृत हुई हैं। उक्त तमिल दिव्यप्रबंधम् में भगवान श्रीरंगनाथ की प्रेम–भक्ति में की गई नीलादेवीस्वरूपा गोदा या आण्डाल की भक्ति–प्रपत्तिरसोद्रेक करने वाली तिरूप्पावै तथा नाच्चियार तिरूमोषि नामक प्रसिद्ध रचनाओं को श्रीवैष्ववों में भक्त्योद्रेक करनेवाला दिव्य रसायन माना जाता है।

तिरूप्पान या मुनिवाहन आलवार का जन्म तमिल चाण्डाल वंश पैरिया में श्रीहरि के श्रीवत्स से हुआ कहा जाता है। ये श्रीहरि की भक्ति में वीणा बजाते हुए ऐसे तल्लीन रहते कि इन्हें बाहरी दुनिया की कोई जानकारी नहीं रहती थी। ऐसी ही अवस्था में उन्हें जगाकर रास्ते से हटाने के लिए जब श्रीरंगनाथ के एक पुजारी द्वारा अछूत होने के चलते दूर से पत्थर मारा गया तो तिरूप्पान ने भगवान के ब्राह्मण पुजारी के समक्ष उनके रास्ते में अपने द्वारा हुई बाधा के लिए अपने को ही कोसा और क्षमा मांगी। पुजारी जब मंदिर गये तो गर्भगृह अन्दर से बंद देखकर आश्चर्यचकित हुए। गर्भगृह को भीतर से बंद देखकर सभी भयभीत हो गये। भगवान के स्नानसेवा का समय निकला जा रहा था। पुजारी भगवान की सेवा में किसी त्रुटि की आशंका से पश्चाताप के आँसू बहाते हुए क्षमा याचना करने लगे। फिर अन्दर से अपने आप बंद गर्भगृह से आवाज आई ''तुमने आज मुझे पत्थर मारा है, इसलिए अब मैं तुम्हे अपनी सेवा में नहीं रख सकता। पूछने पर भगवान ने कहा वे जो कावेरी तट पर वीणा के साथ मेरा नाम–कीर्तन कर रहे थे, वे मेरे ही दुसरे विग्रह हैं। यदि तुम चाहते हो कि मैं गर्भगृह खोलूँ



www.bhojpurisahityangan.com

तो तिरूप्पान को अपने कन्धे पर चढ़ाकर मेरे मंदिर की परिक्रमा करो,अन्यथा मेरा कक्ष नहीं खुलेगा। इस दिव्य वाणी को सुनकर पुजारी दौड़कर कावेरी तीर्थ गये और छू जाने के भय से तिरूप्पान को भागने पर भी उनसे बार बार क्षमा मांगते हुए उन्होंने तिरूप्पान को अपने कंधे पर चढ़ाकर भगवान की आज्ञानुसार मंदिर की प्रदक्षिणा की। इसके बाद तिरूप्पान आलवार मुनिवाहन के नाम से प्रसिद्ध हुए।

कालक्रम में श्री रंगनाथ स्वामी के मंदिर की जीर्णावस्था को देखकर डाकूदल के सरदार के रूप में तिरूमंगै आलवार,जिनके बचपन का नाम नीलन था, ने धनिकों,राजाओं का धन लूटकर उस धन से अन्तःपुरी का निर्माण पूरा कर लिया तो उनकी सदाशयता को जानकर कावेरी क्षेत्र के राजाओं ने भी मंदिर निमार्ण में तिरूमंगै आलवार का भरपूर सहयोग किया। वैसे तो तिरूमंगै के बलप्रताप से राजागण काँपते थे। ये बारह आलवार भक्तों में अंतिम आवार थे। परन्तु वे एकबार भिक्षान्न खाकर ही किसी भिखारी की तरह जीवन यापन करते हुए भगवान में मग्न रहा करते थे। आज का कोसों में विस्तृत श्रीरंगमंदिर वस्तुतः इन्हीं के प्रयास की कड़ी को सुदृढ़ कर चोल आदि शासको द्वारा निर्मित हुआ है। इन्होंने भगवान श्रीविष्णु की भक्ति में पेरिय तिरुमोझी,तिरुक्कुरुनतांडगम,तिरुनेडुनतांडगम,तिरुवेलुक्किरिरुक्कई,सिरिय तिरुमडाल तथा पेरिय तिरुमडाल नामक तमिल काव्यों की रचना की, जिनमें पूरे भारत में 86 दिव्यदेशों में उनके भ्रमण के दौरान भगवान नारायण की दिव्यमहिमा में उनके द्वारा गायी गयीं दिव्य स्तुतियाँ भी शामिल हैं। इनकी ये रचनाएँ भी नालायिर दिव्य प्रबंधम की चार हजार पद्यों में शमिल हैं। इस प्रकार इन विभिन्न विष्णुभक्त आलवारों द्वारा दक्षिण भारत के विस्तृत भूभाग को उसकी जड़ों तक अपनी कोमल भक्तिसुधा से जो सींचा गया उससे भक्ति की पौध विशाल तरूवर की तरह आज तक भारत के प्रेम–भक्त्याभिषिक्त सहृदयी जनों को भगवान की आनन्दमयी छाया में शान्ति एवं आनन्द प्रदान कर रही है।

आलवारों की उसी भूमि पर वीरनारायण नामक ग्राम के एक ब्राह्मणकुल में भगवान के पार्षद विष्वकसेन के दरबारी के रूप में गजवक्त्रांश से रंगनाथमुनि या नाथमुनि का जन्म हुआ। श्रीरंगनाथ की भक्ति में सदा निरत परमज्ञानी नाथमुनि को उनके प्रियपुत्र ईश्वरमुनि का असामयिक वियोग ने कष्ट तो दिया, परन्तु कुछ दिनों के बाद ईश्वरमुनि की संतान के रूप में उन्हें पौत्र मिला। अपने पूरे परिवार के साथ उत्तरभारत के भ्रमण में वृन्दावन के यमुनातट पर पुत्र ईश्वरमुनि की धर्मपत्नी के पाँव भारी हुए थे। अतः पौत्र होने पर नाथमुनि उसका नाम यामुनमुनि रखे, जो बाद में यामुनाचार्य के रूप में सुविख्यात हुए। अपने पुत्र ईश्वरमुनि के असमय देहावसान के बाद परमविद्वान नाथमुनि गृहस्थ जीवन त्यागकर संन्यास ले लिए और मुनियों की तरह पवित्र जीवन बिताने लगे। श्री नाथमुनि ने स्वरचित दो ग्रन्थों 'न्यायतत्व' तथा 'योगरहस्य' में औपनिषदीय तत्वचिंतन सहित भक्ति–प्रपत्तिमूलक श्रीवैष्णव मत का प्रतिपादन किया। इन्होंने ही नम्मालवार श्रीशठकोपस्वामी या शठारि अथवा श्रीपरांकुशमुनि की दिव्य कृपा से आलवारों द्वारा रचित 4000 पद्यों के संकलन नालायिर दिव्यप्रबंध को दिव्य साक्षात्कार के फलस्वरुप प्राप्त किया। वस्तुतः नम्मालवार ने ईश्वरोपासना के साथ वैष्णव दर्शन का समन्वय किया और नाथमुनि एवं उनके पौत्र यामुनाचार्य ने उसे प्रवर्धित कर चिदचिदविशिष्ट दर्शन की नींव रखी। इसे ही केन्द्रबिन्दु में रखकर बोधायनवृत्ति सहित ब्रह्मसूत्र एवं अन्य आगम,शास्त्रों के गहन अनुशीलन एवं अनुसंधान के बाद ग्यारहवीं–बारहवीं शताब्दी(1027–1137ई0 )के महान वैष्णव आचार्य श्रीरामानुज ने ब्रह्मसूत्र पर श्रीभाष्य नामक शारीरिक भाष्य एवं ज्ञान–भक्ति–प्रपत्तिपरक अपने अन्य ग्रन्थों में भक्त्याभिषिक्त विशिष्टाद्वैत वेदान्त का अवदान भारतीय दर्शन को दिया। कहा जाता है कि आज विष्णुदिव्यदेश या मंदिरों में कृष्णयजुर्वेद से संबंधित प्राचीन वैखानस सूत्र तथा तन्त्रपरम्परा में स्वयं नारायण द्वारा प्रदत्त कहे जानेवाले पांचरात्रागम के अनुसार होनेवाली पूजापद्धति–उत्सवों में संस्कृत–आगम,पांचरात्र के अनुशरण के साथ साथ तमिलवेद नालायिर दिव्यप्रबन्ध के पाठ की परम्परा की शुरूवात सर्वप्रथम नाथमुनि ने ही भगवान श्रीरंगनाथ के उत्सवों में की।

नाथमुनि के पौत्र कुशाग्रबुद्धि यामुनमुनि उनकी छत्रछाया में बाल्यकाल में ही वेद एवं अन्यानन्य शास्त्रों में पारंगत हो गये थे। उस समय के पाण्ड्यराजा के सभापण्डित विद्वज्जन कोलाहल के साथ बालक यामुनमुनि का शास्त्रार्थ हुआ। पाण्डयराज्य के उस परम अहंकारी सभापण्डित ने जब यामुनमुनि को प्रश्न करने का अवसर दिया तब निडर बालक यामुनमुनि का खण्डन–मण्डन शैली में पहला पूर्वपक्ष या प्रश्न था–'आपकी माता वंध्या नहीं



www.bhojpurisahityangan.com

है।'–इसका खण्डन कीजिए। अपनी माता की संतान होते हुए विद्वज्जनकोलाहल कैसे कह सकते थे कि उनकी माता वंध्या है। अतः वे कुछ हतप्रभ से होकर चुप रहे। महापण्डित के इस मौन पर राजा एवं सभासद बहुत आश्चर्यचकित हुए। इधर बालक की निडरता एवं आत्मविश्वास को देखकर वहीं रानी को बालक के विजयी होने का पूरा विश्वास हो चला था। वैसे शास्त्रार्थ के प्रारम्भ में ही पाण्ड्यनरेश ने यह घोषणा करवा दी थी कि यदि बालक शास्त्रार्थ में जीत गया तो वे उसे अपने राज्य के आधे भाग का राजा घोषित कर देंगे। यदि परास्त हुआ तो कोलाहल की आज्ञानुसार मृत्युदण्ड तक कोई दण्ड दिया जायेगा। अब सभा पण्डित से बालक यामुनमुनि ने दुसरा प्रश्न किया। कहा– 'पाण्डयनरेश महाधर्मात्मा हैं।'–इसका कृपया खण्डन करें। अपने आश्रयदाता प्रतापी राजा के अधर्मी होने की संसिद्धि सभा पण्डितजी कैसे करें। सभा पण्डित अपनी सर्वजनविश्रुत विद्वता उस बालक द्वारा विनिहत होता हुआ देख भी मौन ही रहे। तभी बालक ने तीसरा प्रश्न कर दिया। कहा– सिंहासनस्थ महारानी परम साध्वी सावित्री के समान साध्वी हैं। इसका कृपया खण्डन किया जाय। अब सभापण्डित क्रोध से तिलमिला उठे। बोले– अरे तू ने मेरा मुँह बंद करने के लिए ही ये भद्दे प्रश्न पूछे हैं। भला अपने राजा को उसका ही सभापण्डित अधर्मी और रानी को असाध्वी कैसे कह सकता है। यह मेरे विरूद्ध तुम्हारा षडयन्त्र है। अपने ही इन बेतुके प्रश्नों का शास्त्रसम्मत् एवं युक्तिसंगत उत्तर जब तक तू स्वयं नहीं दे देता तब तक मैं अपनी पराजय स्वीकार नहीं कर सकता। बालक यामुनमुनि ने अपने द्वारा प्रस्तुत पूर्वपक्षों में से पहले पूर्वपक्ष का खण्डन करते हुए कहा–मनुसंहिता में यह कथन है कि "एकपुत्रो ह्यपुत्र इति लोकवादात्" अर्थात् जिस नारी को केवल एक ही संतान हो उसे लोक कथन में अपुत्रा या वंध्या कहा गया है। दुसरे पूर्वपक्ष के खण्डन में बालक ने कहा कि इसी शास्त्र में मनु ने कहा है कि "सर्वतो धर्मषड्भागो राज्ञो भवति रक्षकः। अधर्मादपि षड्भागो भवत्यस्य ह्यरक्षकः।। अर्थात् प्रजापालक राजा प्रजा द्वारा किये गये धर्म का छठवाँ भाग स्वतः प्राप्त करते रहता है। प्रजापालन में विफल या अक्षम रहने पर राजा को प्रजा के पाप का छठवाँ भाग लेना भी पड़ता है। कलि के अधीन प्रजा प्रायः अधार्मिक होती है। राजा चाहकर भी इतने बड़े प्रजावर्ग को धार्मिक नहीं बना सकते। अतः राजा अधर्म या पाप रहित कैसे कहे जा सकते हैं। तीसरे पूर्वपक्ष के उत्तरपक्ष या उत्तर में बालक यामुनमुनि ने कहा–मनु यह भी कहते है "सोऽग्निर्भवति वायुश्च सोऽर्कः सोमः स धर्मराट्। स कुबेरः स वरूणः स महेन्द्रः प्रभावतः।।" यानि राजा में अग्नि,वायु,सूर्य,चन्द्र,यम,कुबेर,वरूण एवं इन्द्र की स्वयंमेव उपस्थिति हो जाती है। ऐसी स्थिति में रानी एकमात्र राजा की ही धर्मपत्नी कैसे कही जा सकती हैं। वे राजा के अतिरिक्त इन अष्टलोकपालों की भी पत्नी होकर रहती हैं। तब उन्हें साध्वी या सती कैसे कहा जा सकता है। इन कठिन उपपत्तियों की शास्त्रानुसार खण्डनचातुरी को देख सभी हतप्रभ हो प्रफुल्लित हो उठे। रानी आनन्द में निमग्न होकर अश्रुपात करते हुए सिंहासन से सहसा उठकर बालक यामुनमुनि को अपनी गोद में लेकर जोर से कहने लगीं–आलवंदार! आलवंदार!! अर्थात् बालक ने सचमुच महापण्डित कोलाहल को जीत लिया,जीत लिया। तब से ही यामुनाचार्य आलवन्दार भी कहे जाने लगे।

जनश्रुति के अनुसार यामुनमुनि अब पाण्ड्य राज्य के आधे भाग का अधिपति होकर शासन करने लगे। राजा रहते हुए भी वे अपने दादा नाथमुनि के द्वारा अपने हृदय में वपित भक्ति–वैराग्य के बीज को उखाड़ नहीं सके। एक दिन तुडुवलै नामक सत्वगुणवर्धक शाक उनकी की रसोई में पहुँचानेवाले नम्बी स्वामी या राममिश्र नामक महात्मा से भेंट होने पर एवं उनसे अपने दादा द्वारा एक गुप्त स्थान पर प्रचुर धन संचित रहने की बात सुनकर नरेश यामुनमुनि नम्बीस्वामी के साथ बिना अनुचरों,सेना के कावेरी डेल्टा के संगम की ओर चल दिये। जाने के क्रम में महात्मा नम्बी के द्वारा मधुरवाणी से किये जा रहे गीता के सस्वर पाठ से राजा यामुनमुनि का मन अदम्य वैराग्य के वशीभूत होकर राजकाज से हटता गया। श्रीरंगमंदिर के कई गोपूरमों को पार कर जब दोनों गर्भगृह तक पहुँचे तो नम्बीस्वामी ने भगवान श्रीरंगनाथ को दिखाकर यामुनमुनि से कहा आलवंदार ये देखिए आपके पितामह के द्वारा संचित धन शेषशय्या पर लेटे हुए हैं। अपने पितामह के धन के एकमात्र अधिकारी आप इस धन को स्वीकार कीजिए एवं मुझे अब अपने पितामह परम भागवत नाथमुनि द्वारा प्रदत्त जिम्मेदारी से मुक्त कीजिए। इतना सुनते ही यामुनमुनि उन्मत्तावस्था में गर्भगृह में भगवान श्रीरंगनाथ से लिपटकर मूर्छित हो गये। अब आलवंदार की पाण्ड्यराज्य एवं उसके सुख–वैभव की स्मृति–वासना भी अश्रुपात के साथ अपने कुलधन एवं कुलदैवत के पादारविन्द पर गिरकर विलीन हो गयी। आलवंदार यामुनमुनि अब यामुनाचार्य थे। उनका जीवन



www.bhojpurisahityangan.com

सर्वतोभावेन अब श्रीरंगनाथस्वामी के लिए समर्पित था। उस दिन से वे केवल भगवान के ही होकर रह गये। अपने कुलधन श्रीरंगनाथजी की अनन्य उपासना करते हुए उन्होंने स्तोत्र–रत्न,सिद्धित्रयम्,आगम–प्रामाण्यम् एवं गीतार्थ–संग्रह नामक ग्रन्थों की रचना की। मानव के परमोत्कृष्ट एवं परम पवित्र भावों से अपने आराध्य के चरणों को प्रक्षालित करनेवाला स्तोत्ररत्न या आलवंदार स्तोत्र जैसा आत्मनिवेदन ही तो भगवदनुरागियों का सर्वस्व है। आलवंदार ने इन स्तोत्रों में दैन्यपूरित जो आत्मनिवेदन किया है, उसे पढ़कर भगवान के भक्त क्या, किस सहृदयी के हृदय का भावार्द्रबाष्प संघनित हो कर उसके नेत्रों से क्यों न छलकने लगे। जब वे कहते हैं '' धिगशुचिमविनीतं निदर्यं मामलज्जं परम पुरूष योऽहं योगिवर्याग्रगण्यैः। विधिशिवसनकाद्यैर्ध्यातुमत्यन्तदूरं तव परिजनभावं कामये कामवृत्तः''।। यानि– धिक्कार है योगियों में अग्रगण्य कहे जानेवाले मुझ अपवित्र,अविनीत,निर्दय,निर्लज्ज को जो मैं कामभाव से भरा हुआ भी उस आप परमपुरूष के दास्यभाव की प्रार्थना करता हूँ जिसे वास्तव में श्रेष्ठ योगियों में अग्रगण्य ब्रह्मा,शिव,सनकादि भी ध्यान में नहीं ला पाते हैं, ''अपराधसहस्त्रभाजनं पतितं भीमभवार्णवोदरे। अगतिं शरणागतं हरे कृपया केवलमात्मात्कुरू'' यानि मैं हजारों अपराध कर चुका हूँ और इस भयंकर भवसागर में गिरा हुआ हूँ। हे हरि! मेरी कोई दुसरी गति नहीं है,कृपया अपने इस शरणागत को आत्मसात कर लीजिए तथा ''तव दास्यसुखैकसंगिनां भवनेष्वस्त्वपि कीटजन्म मे। इतरावसथेषु मा स्म भूदपि मे जन्म चतुर्मुखात्मना'' अर्थात जो केवल आपके दास्यसुख के लिये लालायित हैं,उनके घर में कीड़ें का भी जन्म चाहूँगा। परन्तु आप से विमुख रहनेवाले के घर चतुर्मुख ब्रह्मा होकर भी जन्म नहीं लेना चाहता, आदि,आदि–तब दैन्य भरे ऐसे निश्छल आत्मनिवेदन को उनका हृदयस्थ सखा,सर्वस्व परमात्मा जानकर क्यों न उसके समक्ष अपने महिमारूपी सच्चिदानन्दस्वरूप को अभिव्यक्त कर अपनी वह कृपा दे दे जो बड़े बड़े ज्ञानी, योगियों को शीघ्र नहीं मिल पाती।

यादवप्रकाश आदि भेदाभेदवादियों से वेदान्त की शिक्षा प्राप्त कर रहे श्रीरामानुज को भक्त्याभिषिक्त विशिष्टाद्वैतपरक अपने ज्ञान–अनुभव को प्रदान कर आलवंदार विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त का प्रकाश श्रीभाष्य आदि वैष्णवग्रन्थों की रचना के माध्यम से कराना चाहते थे। परन्तु अन्ततः जब श्रीरामानुज यामुनाचार्य से मिलने के लिए श्रीरंगम पहुँचने ही वाले थे, यामुनाचार्य अपने कुलधन श्रीरंगनाथ भगवान के दिव्य चरणों में सदा के लिए एकीभूत हो चुके थे। अपने परम आत्मीय महायोगी के देहवियोग से अत्यंत आर्त रामानुज ने देखा कि यामुनाचार्य की तीन अंगुलियाँ मुड़ी हुई हैं। वहाँ एकत्र लोगो से पूछने पर जब जानकारी मिली कि जीवनकाल में आलवंदार की ये अंगुलियाँ मुड़ी हुई नहीं थी तो उनके अभिप्राय को भाँपकर रामानुज ने एक एक कर तीन प्रतिज्ञाएँ की–'' मैं विष्णुमत में रहकर अज्ञान से मोहित लोगों को पंचसंस्कारों से युक्त, द्राविण वेदों में पारंगत कर एवं भगवान के प्रपत्तिधर्म में प्रवृत्त कर सदैव उनकी रक्षा करूँगा। '' ऐसा कहते ही आलवंदार की एक अंगुली सीधी हो गई। जब रामानुज ने कहा '' मै जनरक्षा हेतु सभी निहितार्थों का संग्रह कर मंगलमय परम तत्वज्ञान की प्रतिष्ठा करने वाले ग्रन्थ श्रीभाष्य की रचना करूँगा तो आलवंदार की दुसरी अंगुली सीधी हो गई। फिर जब रामानुज ने कहा कि ''जिन कृपालु मुनि पराशरजी ने दयार्द्र होकर लोगों के आध्यात्मिक अभ्युदय के लिए उनके प्रति जीव, ईश्वर, जगत् के स्वभाव के निरूपण हेतु पुराणरत्न–विष्णपुराण की रचना की, उनके ऋणमोचनार्थ किसी महाप्राज्ञ वैष्णव को उनका अभिधान या नाम दूँगा'' तो सबके देखते यामुनाचार्य की तीसरी अंगुली भी अपने आप सीधी हो गई। अपने आराध्य से इस तरह वंचित होने से अत्यंत क्षुब्ध,आर्द्रदृग श्रीरामानुज ने लोगों के आग्रह के बावजूद उस समय भगवान श्रीरंगनाथ का यह कहते हुए दर्शन नहीं किया कि जिस ईश्वर ने जीते जी उनके आराध्य देवता से भेंट नहीं होने दिया,ऐसे निष्ठुर भगवान को वे नहीं देखना चाहते। वे वरदराज की नगरी कांची में सन्यास लेने तक अपने हृदयस्थ परमभागवत श्रीकांचीपूर्णस्वामी की छत्रछाया में रहने लगे।

आचार्य रामानुज जानते थे कि दलितवर्ग में जन्मे श्रीकांचीपूर्ण भगवान वरदराज से मनुष्यों की तरह वार्तालाप करते थे। एक दिन श्रीरामानुज ने अपनी कुछ आध्यात्मिक शंकाओं को कांचीपूर्ण से कहकर उनसे उनका निराकरण भगवान वरदराज से पूछकर करने की प्रार्थना की। अगले दिन श्रीरामानुज के मिलने पर श्रीकांचीपूर्णस्वामी ने कहा कि विगत रात्रि तुम्हारी शंकाओं पर भगवान ने कहा कि ''मैं ही जगत्कारण प्रकृति का कारण परब्रह्म हूँ। जीव तथा ईश्वर का भेद स्वतः सिद्ध है। मुमुक्षुओं के लिए भगवत्पादारविन्द में आत्मसमर्पण ही



www.bhojpurisahityangan.com

मुक्ति का एकमात्र उपाय है। मेरे भक्त अंतिम समय में मेरा स्मरण नहीं कर सकें तो भी उनकी मुक्ति अवश्यम्भावी है। अपने भक्तों का देहत्याग होते ही मैं उन्हें परमपद प्रदान करता हूँ। सर्वगुणसम्पन्न महात्मा महापूर्ण का आश्रय महामति रामानुज ग्रहण करें। मेरी कही हुई ये बातें रामानुज को जल्द बताओ।" स्वयं भगवान के मुखारविन्द से कही हुई ये बातें सुनकर श्रीरामानुज आत्मविभोर होकर नाचने लगे और निम्नवर्ग से आनेवाले श्रीमहापूर्णस्वामी से दीक्षा लेने के लिए जन्मना ब्राह्मण तत्वानुवेषी श्रीरामानुज श्रीरंगम के लिए प्रस्थान किये।

उधर श्रीयामुनाचार्य के बाद श्रीरंगम की पीठ पर आसीन तिरूवररंगाचार्य ने अपने स्थान पर एक साथ तत्ववेत्ता एवं विष्णु के परम भक्त लक्ष्मणावतार श्रीरामानुज को मठ की गद्दी पर बैठाने के उद्देश्य से परमभागवत महापूर्णस्वामी को कांची भेज चुके थे। अतः रास्ते में ही दोनों महानुभाव मिले। महापूर्ण स्वामी ने रामानुज के दोनों बाहुमूल को शंख–चक्रंकित कर उन्हें वैष्णव मंत्र की दीक्षा दी। अब अपने गुरू,गुरूपत्नी के साथ रामानुज कांची आ गये जहाँ दलित गुरूपत्नी से कुएँ पर जल का स्पर्श हो जाने के कारण अपनी पत्नी जमाम्बा द्वारा किये गये गुरूपत्नी के अपमान से क्षुब्ध होकर रामानुज ने उन्हें उनके मायके में विवाहोत्सव होने का झूठ बोल कर अपनी ससुराल भेज दिया एवं स्वयं काषायवस्त्र तथा वैष्णव परम्परा में धारित होनेवाले त्रिदण्ड धारण कर वरदराज भगवान के चरणाम्बुज में गिरकर सन्यासी हो गये। गैरिक वस्त्र एवं त्रिदण्डधारी रामानुज की दिव्यआभा से अभिभूत हो जनता ने उन्हें यतिराज का विरूद प्रदान किया। उनके गुरू महापूर्णस्वामी, जिन्होंने श्रीरामानुज को तमिलप्रबंध के साथ साथ न्यायतत्व,सिद्धित्रय,व्याससूत्र,पांचरात्रागम,गीतार्थ–संग्रह की सम्यक् शीक्षा प्रदान की थी, वैष्णवमंत्रानुसंधान विशेष के लिए उन्हें गोष्ठीपूर्ण स्वामी के पास भेजे। बहुत दिनों तक रामानुज की मन्त्र–धारण योग्यता की परीक्षा लेने के बाद गोष्ठीपूर्ण ने मन्त्र देकर कहा कि इस मन्त्र को सुनने मात्र से भी कोई शरीर छोड़ने के बाद वैकुण्ठ चला जायेगा, इसलिए इसे किसी को नहीं देना। लौटते समय उन्होंने सोचा कि जब इस मन्त्र को सुनने मात्र से कोई भी वैकुण्ठलोक का अधिकारी हो जायेगा तो मैं क्यों न इसे जनसमुदाय को देकर अधिक से अधिक लोगो को अनादि काल से चले आ रहे दुःख–दुदर्शा से मुक्त कर उन्हें वैकुण्ठलोक का अधिकारी बना दूं। उस क्षेत्र के विशाल जनसमुदाय को उन उभय–विभूतिपति श्रीरामानुजाचार्य ने अत्यंत दयार्द्र होकर एक गोपूरम से श्रीमन्नारायण की शरणगति प्राप्त करानेवाला अष्टाक्षर महामंत्र "ओम् नमो नारायणाय" जोर से बोलकर प्रदान किया। इस अष्टाक्षर महामन्त्र को पाकर जनता यतिराज के चरणों में साष्टांग कर गद्गद् एवं कृतार्थ हो गई। इस घटना को सुनकर गोष्ठीपूर्णस्वामी रामानुज पर बहुत क्रुद्ध हुए। जब यतिराज उनसे मिलने गये तो गोष्ठीपूर्ण ने कहा कि तुम्हें तो नरक में भी जगह नहीं मिलेगी। इस पर यतिराज ने विनयपूर्वक हाथ जोड़कर कहा कि नरक जाने के लिए तैयार होकर ही दास ने आपकी आज्ञा का उल्लंघन किया है,अस्तु मेरे समान एक क्षुद्र जीव के नरकवास मिलने से यदि हजारों स्त्री,पुरूष वैकुण्ठ प्राप्त कर लें तो इससे बढ़कर श्रेयस्कर मेरे लिए क्या हो सकता है। अब गोष्ठीपूर्ण अपनी संकीर्णता एवं यतिराज की जीवों के प्रति अकारण उदारता को समझ चुके थे। अत्यंत ग्लानियुक्त होकर रामानुज से क्षमा मांगते हुए गोष्ठीपूर्ण ने कहा कि आज से आप मेरे गुरू और मैं आपका शिष्य हुआ। अत्यंत उदार एवं विशाल हृदयवाले आप निश्चय ही भगवान नारायण के अंशावतार हैं, मैं एक सामान्य जीव हूँ, अतः मेरे कृतापराध के लिए मुझे क्षमादान दीजिए। ऐसा सुनते ही महामना रामानुज गोष्ठीपूर्ण के चरणों में गिरकर अश्रुपात करते हुए बोले– कृपाकर ऐसा नहीं कहें,आप मेरे नित्यगुरू हैं। आज्ञा के उल्लंघन के बावजूद आपने मुझे क्षमाकर मुझे कृतार्थ कर दिया। इसके बाद गोष्ठीपूर्ण ने अपने पुत्र को यतिराज की सेवा में उनके शिष्यरूप में समर्पित कर उनके साथ भेज दिया।

इस घटना के बाद लक्ष्मणावतार के रूप में प्रसिद्ध यतिराज रामानुज के कभी वेदान्तगुरू रह चुके भेदाभेद दर्शन के विश्रुत आचार्य यादवप्रकाश अपने शिष्य रामानुज के दिव्य आभामण्डल से अपने को आलोकित हुआ अनुभव कर अपने शिष्य के ही शिष्य हो गये। कहना न होगा कि कांची के श्रीकांचीपूर्ण स्वामी के माध्यम से हस्तिगिरिपति भगवान श्रीवरदराज द्वारा ब्रह्म,जीव,जगत् एवं भगवान की कृपासाध्या भक्ति के स्वरूप से अवगत यतिराज ने नाथमुनि तथा आलवंदार यामुनाचार्य से प्राप्त ज्ञान,भक्ति,वैराग्य की त्रिवेणी में अवगाहन के फलस्वरूप भक्तिस्निग्ध जिस विशिष्टाद्वैत दर्शन से भारत ही नहीं, पूरे विश्वगगन को देदीप्यमान किया उससे आलोकित हो भक्ति एवं असंदिग्ध ज्ञान को विकिरित करने वाले अनेक दिव्य महात्माओं ने भक्ति एवं ज्ञान के द्वार समाज के



www.bhojpurisahityangan.com

सभी वर्गों के लिए बिना भेद–भाव के खोल दिए। श्रीरामानुजाचार्य ने पूरे भारत का भ्रमणकर विशिष्टाद्वैत दर्शन से आलोकित वैष्णवभक्ति का परचम लहराया। कहते हैं कि सल्तनतकाल में मुस्लिम आक्रान्ताओं द्वारा भारत के विभिन्न मंदिरों के ध्वंशोपरांत लुटी गई देवप्रतिमाओं के दिल्ली स्थित किसी संग्रहालय से यादवाद्रिपति की अर्चाप्रतिमा–सम्पत कुमार को दिल्ली के तत्कालीन मुसलमान शासक से प्राप्तकर आधुनिक मेलकोटे में श्रीरामानुज द्वारा लाये जाने के बाद के उस यवन शासक की बेटी लच्चीमार बीबी, जिसे उक्तविग्रहधारी सम्पतकुमार से अगाध प्रेम था, लम्बी प्रेमाभक्त्याद्र प्रतीक्षा के बाद मेलकोटे स्थित यादवाद्रिपति सम्पतकुमार के गर्भगृह में प्रवेश पाते ही अपने महबूब सम्पतकुमार के अंग में द्रवीभूत होकर विलीन हो गई। कहते हैं उस यवनपुत्री का यवनप्रेमी कुबेर भी लोगो के सामने श्रीसम्पतकुमार के विग्रह में अपनी प्रिया लच्चीमार बीबी को विलीन हुआ देख श्रीरंगेश से मिले संकेतानुसार श्रीरंगम से चलकर पतित पावन भगवान श्रीजगन्नाथ की कृपा पाकर कृत्कृत्य हो गया। श्रीरामानुज ने उस यवनपुत्री को श्रीवैष्णवों की श्रद्धा का पात्र बनाया और आज भी उस यवनकन्या को दक्षिण के मेलकोटे आदि अनेक मंदिरों में भगवान के कृपालब्ध भागवतों की तरह श्रद्धा–सम्मान दिया जाता है। साभार–सोमानी ट्रस्ट से प्रकाशित श्रीमदनन्ताचार्यप्रणीत व यतीन्द्रस्वामिश्रीरामनारायणाचार्य द्वारा संशोधित 'प्रपन्नामृत', श्रीरंगनाथ प्रेस,वृन्दावन का अनन्त सन्देश एवं अद्वैताश्रम,कोलकाता से प्रकाशित स्वामी रामकृष्णानन्दकृत श्री रामानुज चरित।

दक्षिण एवं उत्तर भारत में रामानुजाचार्य के ईश्वरभक्ति से स्निग्ध विशिष्टाद्वैत दर्शन को मौलिकरूप या आंशिक रूपभेद से अपनाकर निम्बार्काचार्य,मध्वाचार्य,रामानन्दाचार्य, वल्लभाचार्य, चैतन्यमहाप्रभु प्रभृति महात्माओं ने विभिन्न राजनैतिक–सामाजिक–धार्मिक उथल पुथल व गुलामी आदि से उत्पन्न उत्पीड़न, शोषणजन्य धार्मिक अवसाद के कारण शदियों से कुण्ठित होकर अपने अस्तित्व की रक्षा हेतु उदारमना महापुरूषों की बाट जोहते हिन्दू जनमानस को भगवान की उस भक्ति की राह दिखाई, जिस पर बिना जातिभेद, ऊँच–नीच आदि विषमता एवं अन्यायपरक भेदभावजनित अवरोध के समाज के सभी वर्ग चल पड़े। कई दलित व निम्न जाति के महात्माओं को अपना गुरू बना चुके एवं चिरकाल के नरकवास को भी स्वीकार कर जनमानस के समग्र आध्यात्मिक अभ्युदय के लिए श्रीरामानुजाचार्य ने जाति, वर्ग का बिना भेद–भाव किये लोगों की भक्त्योत्कंठा को सम्मान देकर उन्हें आत्मीय की तरह अपनाया।

श्रीरामानुजाचार्य की तरह ही जन्मना ब्राह्मण श्री रामानन्द ने उनके विशिष्टाद्वैतदर्शन को अपनाकर उत्तर एवं पश्चिमी भारत में भक्ति आंदोलन का सूत्रपात किया। उन्होंने बिना भेदभाव के एक ओर सगुणोंपासक आनन्दानंद,सुरसुरानन्द, सुखानन्द,नरहरि दास, सेन नाई आदि कितने लोगों को रामभक्ति हेतु राममन्त्र दिया, वहीं उन्होंने ईश्वर के निर्गुण स्वरूप में आस्था रखनेवाले कबीरदास,रविदास या रैदास आदि को भी बिना किसी शर्त के राममन्त्र प्रदान किया। सम्प्रदाय के रूप में श्रीसम्प्रदाय के आराध्य नारायण की जगह उनके ही मनुजावतार दाशरथी श्रीराम को आराध्य बनाकर रामानन्दी–वैरागी सम्प्रदाय की नींव भक्तशिरोमणि श्रीरामानन्द ने रखी। उनके शिष्य परम्परा में ब्राह्मण तुलसीदास, क्षत्रिय पीपाजी, जाट धन्ना, वैश्य पीनारा, दलित रविदास, मुसलमान कबीर आदि तक सभी जाति,वर्ग के लोग शामिल थे। सचमुच भक्त्याग्नि द्वारा रामानन्द ने जाति,वर्ग आदि महापूर्वाग्रह रूपी समाज के दुर्दम्य दैत्यों को उस समय लगभग भस्मसात ही कर डाला था। श्रीरामानन्द एवं उनकी शिष्य परम्परा में गोस्वामी तुलसीदास ने हिन्दू समाज को भावनात्मक–धार्मिक–सामाजिक बिखराव से बचा लिया जो शदियों के गुलामी–हीनतारूपी ग्राह के जबड़े में दबकर आर्तनाद कर रहा था। अतः जनमानस ने परम उदारमना एवं विशालहृदय श्रीरामानन्दजी को उनकी सर्वजनसमावेशी प्रकृति एवं वर्ण,जाति,समुदाय से परे मनुष्य मात्र को रामभक्ति का अधिकारी घोषित कर रामभक्ति में रमाने के कारण उन्हें भगवान श्रीराम का गुरूरूप में अवतार माना। इनके शिष्य रविदास या रैदास की शिष्या मीराबाई की कृष्ण की पतिरूप में पराप्रीति–प्रेमोपासना प्रेमलक्षणाभक्ति के अन्यतम उदाहरणों में दक्षिण के आण्डाल अथवा श्रीगोदा देवी की तरह बहुत विश्रुत हैं।

भारतीय जनमानस में ज्ञान–भक्ति–वैराग्य के उत्स, विकास एवं उत्कर्ष के उत्प्रेरक, उसकी प्रभापुंज को चतुर्दिक् फैलानेवाले एवं मानवमात्र की समग्र आध्यात्मिक उन्नति तथा आत्मचेतना के ध्वजवाहक कुछ महान् आचार्यों,विचारकों तथा पथप्रदर्शकों के धार्मिक,दार्शनिक मतों एवं विचारों के साथ साथ श्रीमद्भागवत के परमाराध्य श्रीकृष्ण के कृपापात्र भागवतों के पावन चरित के प्रसंगानुशयी कुछ विशद विवरण के लिए क्षमायाचना करते हुए



www.bhojpurisahityangan.com

अब मैं इस प्रबंधकाव्य के चार सर्गो(सर्ग संख्या 2 से सर्ग संख्या 5) में आये भगवान श्रीकृष्ण के प्रस्थानत्रयीय स्वरूप के वर्ण्य विषय– ब्रह्म,ईश्वर,माया,जीव,जगत्,प्रकृति आदि सहित अकल्मष प्रेम,वात्सल्य,भक्ति–ज्ञान सहित चारों पुरुषार्थो के अहैतुक प्रदाता एवं विशुद्ध प्रेमलक्षणाभक्ति की मूर्तिमती ब्रजललना गोपियों तथा प्रेमविदग्धों के हृदय पर सतत राज करनेवाले इस प्रबंधकाव्य के नायक श्रीकृष्ण के पावन एवं हृदयस्पर्शी चरित के कुछ वर्ण्यविषयों व प्रसंगों का तद्रूप संक्षिप्त उल्लेख यहाँ निम्नवत रखना चाहता हूँ।

आत्मा,ब्रह्म,परमात्मा,ईश्वरः–

जहाँ कहीं प्रस्थानत्रयी में आत्मा के उल्लेख भइल बा
परमात्मा ही समुझे जहाँ ना जीव के प्रकरण कहल गइल बा।

आत्मा ब्रह्म, ईश,सच्चिदानन्द,अक्षर,सत्य भी कहल गइल बा
प्रत्यगात्मा, साक्षी, परम भा दिव्य पुरुष भी कहल गइल बा।। अ0 सर्ग–4,भाग–3–38।।

एह आत्मा के रूप ना केहू के भी नैन में आइ सकेला।
ई त मनीषी के विकल्प से रहित बुद्धि से मनन होखेला।
जे एकरा के ब्रह्मरूप से जाने ऊ ही अमर होखेला।143।। अ0 सर्ग–3,भाग–2–41।।

आत्मा ई ना वेदाध्ययन, प्रवचन से ना केहू के मिले
तेज दिमाग से भी ना मिलेला,बहुत सुने से भी ना मिले।
जे एकरा के, ई जेकरा के वरण करे ओकरे से मिले
ओकरा प्रति अपना स्वरूप के ठीक ठीक आत्मा ई खोले12।। अ0 सर्ग–2,भाग–1–13।।

जेकरा से जनमे सभ भूत, जनमिके जेह से जीये प्राणी।
अंत में मिले सभे जेकरा में ऊहे ब्रह्म ह, एह के जानी156।। अ0 सर्ग–3,भाग–2–55।।

एह से ब्रह्म निमित्त विश्व के,ऊहे विश्व के उपादान।
याने ब्रह्म ही कारण विश्व के,विश्वसामग्री सोएम,न आन159।। अ0 सर्ग–3,भाग–2–58।।

ब्रह्म ही सभ सउँसार,अनन्त जीव के भी एकमात्र आधार
ओकरे में, ओकरे से, ऊहे सारा जगत, जीव, बेवहार।
ऊ ना खाली जगत,जीव ही, नेति, नेति, एह सभ से पार
जगत,जीव के सकल विविधता ब्रह्म में हो जाला एकसार।। अ0 सर्ग–3,भाग–2–64।।

जीवः–

जीव, प्रमाता, विज्ञानात्मा, आत्मा, जीवात्मा जीव के नाम।
देह रुपी पुर में रहला से पुरुष त ह ही जीव के नाम।
सम्प्रसाद, प्रत्यगात्मा जहाँ ना ईश्वर प्रकरण, जीव के नाम।। अ0 सर्ग–4,भाग–3–39।।

जेकरा रहते ही होखेला देहगत चयापचय बेवपार
जेकरा करते कूच देह मूरदा हो जाला ऊहे आधार।
कहल जाला जीवात्मा जेकर ना जन्म, न नाश,संहार
अविनाशी,पुराण,अज,शाश्वत आत्मा होला बिनु आकार 152–1।। अ0 सर्ग–3,भाग–2–50।।



www.bhojpurisahityangan.com

जीव मानिके अलग अलग अपना के आ ओह परमात्मा के।
घुमत रहेला ब्रह्मचक्र में पाके उर्जा अनात्मा के।
अमृतत्व पावे जब एके जाने निज अरु परमात्मा के 216।। अ0 सर्ग–4,भाग–3––40।।

क्षर–अ़क्षर भा व्यक्ताव्यक्त विमिश्रित विश्व ईश से पोषित।
भोक्तृभाव से जीव फँसेला, जानिके ईश होला उन्मोचित218।। अ0 सर्ग–4,भाग–3–42।।

ईश्वर अंश एही से जीवात्मा में भी गुण ईश्वरे समान।
किन्तु रहेला छिपल प्रकट होला कइला से ईश के ध्यान।
काहें कि ईश्वर के ही कारण जीव में बन्धन–मोक्ष विधान 191।। अ0 सर्ग–3,भाग–2–101 ।।

जगतः–

जइसे मकड़ी अपने से ही जाल बनावे, राखे, निगले
जइसे पृथिवी से औषधि, वनस्पति अपने आप ही निकले।
जइसे जीवित पुरूष से रोंवा, केश, नोह अपने ही निकले
ओसहीं अक्षर से ई विश्व बिनु चाह भा बिना प्रयास के निकले154।। अ0 सर्ग–3,भाग–2–53।।

जइसे धनकत आगि से ओकरे अइसन ही निकले चिनिगारी।
ओसहीं ओह अक्षर से निकले विविध वस्तु नाम–रूपधारी।
फिरू विलीन ओकरे में हो जाले ऊ नामाकार–विकारी155।। अ0 सर्ग–3,भाग–2–54।।

पृथिवी,जल,पावक,समीर,आकाश,मनस्,बुद्धि,अहम् ई आठ।
ह अपरा प्रकृति भगवान के, परा प्रकृति जीव ह साथ।
जेकरा से होला धारित ई सकल जगत अपरा के साथ202।। अ0 सर्ग–4,भाग–3–11।।

ईशाश्रृत दुनो प्रकृति से जनमे सकल भूत समुदाय।
ईश्वर ही सम्पूर्ण जगत के प्रभव, प्रलय अरू पालक,धाय203।। अ0 सर्ग–4,भाग–3–12।।

माया,प्रकृतिः–

त्रिगुणमयी अति अद्भूद माया ह हमार अति अपरम्पार।
पर जन भजे जे हमरा के ऊ तरे ई मायारूप सउँसार205।। अ0 सर्ग–4,भाग–3–14।।

माया के त प्रकृति बुझीं, मायावी के समुझीं महेश्वर।
जगत कार्य–कारण संधात प्रकृतिज ह कार्य,कारण परमेश्वर261।। अ0 सर्ग–4,भाग–3–129।।

माया के स्वरूप के बरणन हो ना सके ला परिभाषा से।
एकर त निर्वचन होखेला कार्य जवन लउके एकरा से।। अ0 सर्ग–3,भाग–2–108।।

अपने आप में माया नाम के सत्ता ना स्वतंत्र ईश्वर से।
ईश्वर के कारण–निमित्तता जानल जाला एह ल़क्षण से।। अ0 सर्ग–3,भाग–2–109।।

जहाँ सृष्टि,जहवाँ विनाश, सुर,असुर,मनुज,सभ भाँति के प्राणी
कारण–कार्य श्रृंखला, सुख, दुख,भोग, जहाँ तक पहुँचे वाणी।



www.bhojpurisahityangan.com

वैयक्तिकता, एकदेशित्व, अणुत्व, सीमितता, तन, मन, नाड़ी
बुद्धि, अनात्मविषय में सुख, भोक्तृत्व जहाँ तहँ माया रानी।। अ0 सर्ग–3,भाग–2–110।।

मायाधीश ईश के जाने जीव के जाने मायाधीन
एके तत्व के दुगो पहलू दुनो ना तत्वरूप से भिन्न।
द्वैत सिर्फ माया के कारण माया हटल जीव ब्रह्मलीन
जन्म, मृत्यु माया के, मायाकारण, माया में लवलीन।। अ0 सर्ग–4,भाग–3–131।।

माया, माया कतनो कऽरे, भा देबे गारी बीन बीन
केहु कहे अपने कल्पित, केहु क़हेला भावाभाव विहीन।
लेकिन जब तक मायाधीश ना मायाधीन से लेबे छीन
तब तक महायोगि भइलो पर के हो सकत बा मायाहीन।। अ0 सर्ग–4,भाग–3–132।।

जीव तथा ईश्वर का शाश्वत मित्रवत् संबंध एवं अपने सखा ईश्वर की अपरोक्षानुभूति से जीव के जन्म,जरा,मराणादि के हेतु कामनादि रुपी हृदय–ग्रन्थि के नाश से मोक्ष यानि अमरत्व प्राप्ति।

दु इयार सुनर पंछी एके तनतरू पर संग रहेलन।
ओकरा में से एगो पंछी गोदा(कर्मफल) पीपर के खाएलन।
दोसर खग गोदा ना खाले,बस इयार के देखत रहेलन208।। अ0 सर्ग–4,भाग–3–18।।

एके फेंड़ प रहे वाला जीवरूपी खग शोक करेला।
पर जब ईश्वर सखा के आ ओकर विशाल महिमा देखेला।
तब अपना असली स्वरूप के पाके शोक रहित होखेला209।। अ0 सर्ग–4,भाग–3–19।।

स्वर्णवर्ण ब्रह्मा के जनयिता ईश–पुरुष के जब केहु देखे।
तब विद्वान ऊ पूण्य,पाप तजि समता परमोत्कृष्ट हभेखे210।। अ0 सर्ग–4,भाग–3–20।।

एह शरीर के नाश होखे से पहिले जे भी ब्रह्म के जाने।
होला भवबन्धन से मुक्त, तन पावे जे ना ब्रह्म के जाने142।। अ0 सर्ग–3,भाग–2–40।।

एह आत्मा के रूप ना केहू के भी नैन में आइ सकेला

ई त मनीषी के विकल्प से रहित बुद्धि से मनन होखेला
जे एकरा के ब्रह्मरूप से जाने ऊ ही अमर होखेला143।। अ0 सर्ग–3,भाग–2–41।।

जब समस्त कामना जीव के ओकरा हिरिदा से छुटि जाला।
तब ई मर्त्य अमर होला, एह तन से ब्रह्मभाव पा जाला144।। अ0 सर्ग–3,भाग–2–42।।

जब एह जीव के जीवन में ही हिय के सकल ग्रन्थि कटि जाला।
तब ई मर्त्य अमर होला, अतने वेदान्त आदेश कहाला145।। अ0 सर्ग–3,भाग–2–43।।

जीव(अज्ञ) आ ईश्वर (सर्वज्ञ) दुनो अजन्मा,भोग ला अजा प्रकृति नियुक्त
विश्वरूप आत्मा त अनन्त, अकर्ता, जीव से जब अनुभूत।
ईश्वर, जीव, प्रकृति बा तीनो अद्वयब्रह्म में ही अनुस्यूत
तब उ जीव कृतकृत्य होइके सभ प्रपंच से होला मुक्त219।। अ0 सर्ग–4,भाग–03–43।।



www.bhojpurisahityangan.com

परमात्मा के ज्ञान से होला हानि समस्त अविद्यामल के
क्लेश के क्षय भइला से नाश होखेला जन्म–मरण रूप खल के।
देव के ध्यान देह छोड़ला पर देला तृतीयावस्था फल के
जेह से विश्वैश्वर्य मिलल छोड़ि पावे आप्तकाम केवल के221 ।। अ0 सर्ग–4,भाग–3–45 ।।

जीव के आत्मबोध अथवा ईश्वर की अव्यभिचारिणी भक्ति से संसृतिचक्र के नाश के प्रसंग में मैं श्वेताश्वतरोपनिषद् के उस मन्त्र को यहाँ रखना चाहता हूँ जिसमें श्रुति का उद्घोष कितना हृदयावर्जक है कि जीव यदि चमड़े के समान आकाश को अपने शरीर पर लपेट ले तो ईश्वर को बिना जाने यानि ईश्वर में बिना आस्था के भी जन्म,जरा,मरणादि रुप संसृति दुःख का अंत हो सकता है। परन्तु क्या कोई ऐसा कर सकता है? अस्तु! अपने सखा,परमाधार,नियन्ता एवं मायाधीश ईश्वर को अपरोक्षानुभूति से जानकर मायाधीन जीव इन संसृति दुःखों से सदा के लिए मुक्त होकर अनन्त,नेति नेति एवं सच्चिदानन्द परमात्मा,ब्रह्म के अनन्त आनन्द का भागी हो सकता है।

जवना घरी में लोग आकाश के चमड़ा अस लीहें लपिटाइ।
तवना घरी देव के ना जनलो पर दुःख के अन्त हो जाइ348 ।। अ0 सर्ग–5,भाग–4–140 ।।

याने जइसे चमड़ा अस आकाश लपेटल ना बा सम्भव।
ओइसे ही बिनु ईश के जाने बाटे दुःख के अन्त असम्भव ।। अ0 सर्ग–5,भाग–4–141 ।।

निम्नलिखित मंत्रों में ब्रह्म अथवा ईश्वर ज्ञान के सबंध में श्रुति ने साधक के लिए कुछ सावधानियाँ बता रखी है। यथाः–

शास्त्रज्ञान से मुक्ति मिले ना जब तक ना दुश्चरित के छोड़े
जब तक शान्त, समाहित होके मन ना नश्वर सुख से मोड़े।
जब तक आपन अहं छोड़िके मन ना आत्मतत्व से जोड़े
जब तक ना नानात्वदृष्टि के छोड़ि अविद्याग्रन्थि ना तोड़े212 ।। अ0 सर्ग–4,भाग–3–33 ।।

अब मैं काव्यपक्ष के उन पहलुओं को रखना चाहता हूँ जिसमें नन्दगावँ के लोग कंश द्वारा अपनी मृत्यु की मृत्यु के उद्देश्य से रचित षडयंत्र के कारण विचित्र घटनाएँ नन्दब्रज में देखते हैं तथा अत्यन्त भयभीत होकर नन्दनन्दन श्रीबालकृष्ण के कुशलक्षेम के लिए वृष्णिवंश के कुलदैवत नारायण से प्रार्थना करते हैं। पर हर बार बाल्यकाल में ही जगह जगह पर कंश के असुरकर्मियों के जानलेवा उपद्रवों के शमनार्थ श्रीबालकृष्ण द्वारा अपने नारायणत्व को प्रकटकर उनका दमन व विनाश करते जाने पर उन नन्दलला की अलौकिक शक्ति की झांकी देखकर कुछ अचंभित एवं रोमांचित से होते हैं। श्रीकृष्ण का जन्म वृष्णिवंश में वसुदेव एवं देवकी की आठवीं संतान के रूप में होता है। आकाशवाणी एवं नारदजी के वचनों से भयभीत कंश वसुदेव एवं देवकी की आठवीं संतान के रूप में अपनी मृत्यु से बचने के लिए अपनी सगी बहन एवं बहनोई को पहले से कारागार में डालकर बेडियों में जकड़ रखा था। परन्तु बेड़ियों में जकड़े वसुदेवजी मध्यरात्रि में जन्मे बालक को भगवान की योगमाया से यमुना पार कर सुरक्षित अपने मित्र नन्द के घर यशोदा के पास रखकर यशोदा–पुत्री को कारागार में लेकर आ जाते हैं। भगवान की योजनानुसार उनके अंश संकर्षण श्रीबलरामजी का कंश के भयवश नन्दजी के घर में रह रही उनके मित्र वसुदेव की दुसरी पत्नी रोहिणी के गर्भ से नन्दगृह में पहले ही जन्म हो चुका है। कंश उस कन्या को वसुदेव एवं देवकी की आठवीं संतान समझकर मारना चाहता है। परन्तु वह उसके हाथों से छुटकर आकाश में जाते हुए कंश से कहती है कि उसकी मृत्युरूप बालक का कहीं और जन्म हो चुका है। इधर कृष्ण को अपने पुत्र के रूप में पाकर नन्द यशोदा फुले नहीं समाते। नन्द,यशोदा के घर उत्सव हो रहा है। भोजपुरी भाषा–भाषी पृष्ठभूमि में यशोदा के आंगन में मांगलिक सोहर,सहाना,खिलौना आदि गाये जाने का उद्भाव मैंने इस प्रबंध में किया है। गाँव की बुजुर्ग एवं हमउम्र महिलाएँ यशोदा को उनके गर्भधारण से संबंधित श्रृंगारिक गीत सुना रही हैं जो आठवें सर्ग में इस तरह है।



www.bhojpurisahityangan.com

भाटिनि लगली नाचे ढोलक झाल  नाल  डफ बाजे लागल।
माँग में सेनुर, माथ प तेल सोहागिनि नारि के लागे लागल।। अ0 सर्ग–8–81।।

गोपी बुढि बुढ़ि जे रह्ली उछहल मंगल सोहर उठवली।
सुनत रोहिनी, मातु जशोदा दरब छुटिके  खूब लुटवली।। अ0 सर्ग–8–82।।

कवना दिने माथवा मिसाईल, मंगिया टिकाईल हो।
ए ललना कवन रहे रतिया सोहावनि होरिला ले आइलि हो।
ए  जसुमति  कवन रहे  रतिया सोहावनि होरिला ले आइलि हो।। अ0 सर्ग–8–83।।

अब कंश अपने दानवी अनुचरों पूतना,शकटासुर,तृणावर्त आदि को अपनी मृत्यु की मृत्यु के उद्देश्य से नन्दगाँव भेजता है, जो बालकृष्ण के द्वारा अपने नारायणत्व को प्रकटकर खेल खेल में खेत कर दिये जाते हैं। कुछ बड़े होने पर कृष्ण बालसुलभ शरारतें करते हैं– वे गायों के दुहने के पहले ही बछड़ों को दूध पीने के लिए खोल देते हैं। ग्वालिनें जब ऐसा करने से मना करती हैं तो वे टेढ़ी बात करते हैं और उनुका मजाक उड़ाते हैं। दसवें सर्ग में ये पद द्रष्टव्य हैं। दसवे सर्ग में नटखट नन्दलाल की कुछ लीलाएँ इस प्रकार हैं।

एक दिन नन्द बाबा के घरे अइली  जा गोपी गोटिया के।
कहे  लगली  जा करतूत  जशोदा जी से श्याम लला के।। अ0 सर्ग–10–33।।

बड़ी  नटखट  भइल  बाड़े तोहर लाल, ए जशोदा जी।
इनिकर बिगड़ता चाल ए जशोदा जी।। अ0 सर्ग–10–34।।

दुहेके बेरा से पहिले बछरून के खोलऽतारे।
डाँटला  प  हँसेले ठठाके, टेढ़  बोलऽतारे।
मन करे धके तब चूमीं जा इनिकर गाल,ए जशोदा जी।। अ0 सर्ग–10–35।।
इनिकर बिगड़ता चाल ए जशोदा जी।।

श्रीकृष्ण के वास्तविक माता पिता तो देवकी और वसुदेव थे। परन्तु देखिए उस सर्वतन्त्रस्वतन्त्र, अनन्तलोकसुसर्जक, अनन्तलोकसुपालक, अनन्तलोकसुचालक, अनन्तलोकविसर्जक, अमितानन्दार्णव, सर्वानन्ददाता,सर्वभाग्यविधाता,ब्रह्मा–शिव–सनकादि–नारदादिकातिध्येय, शिवाद्वैत–शान्त–प्रपञ्चोपशमप्रमेय और चिदचिद्विशिष्टाद्वैत अजन्मा श्रीकृष्ण अपने शरणागतों,प्रपन्नों के आनन्द के लिए अपने मानवीलीलाविग्रह के मानुषी माता–पिता को कैद में छोड़कर एक ग्राम्य ग्वाले नन्द एवं उनकी सहधर्मिणी यशोदा को वात्सल्यसुख  देते हैं, जो एक माता–पिता का सर्वस्व एवं वस्तुतः अमोल होता है।

इसी सर्ग में कृष्ण के मिट्टी खाने,यशोदा द्वारा इसकी जाँच के लिए कृष्ण का मुँह खुलवाने पर ब्रह्माण्ड दर्शन,यशोदा द्वारा कृष्ण को ऊखल में बांधने का प्रसंग आया है। भगवान की इस प्रिय लीला के प्रसंग में परमज्ञानी भागवत श्री शुकदेव गोस्वामी राजा परीक्षित से कहते हैं–''राजन! भगवान मुकुन्द श्रीकृष्ण से वह ग्वालिन यशोदा जितनी कृपा पायी उतनी कृपा सर्वलोकपितामह ब्रह्मा,कपर्दी भगवान शिव तथा स्वयं भगवान के वक्षःस्थलपर सदा निवास करनेवाली श्रीनिधि श्रीलक्ष्मीजी भी नहीं पा सकी।

^ सुनी मुक्तिदाता मुकुन्द से कृपा ऊ ग्वालिन पवलसि जवन।
ना  पवले विरंचि, ना शिव, ना पवली श्री हरि उर के तवन।। अ0 सर्ग–10–103।।

यहीं नारदजी के श्राप से कुबेर के दो पुत्रों के यशोदा के आंगन में यमलार्जुन के दो वृक्षों के ऊखल में बंधे भगवान के द्वारा उद्धार का प्रसंग आया है। एगारहवें सर्ग में ही कृष्ण द्वारा वत्सासूर,बकासुर एवं अघासुर को मारने



www.bhojpurisahityangan.com

का प्रसंग है।

नाम रहे बक ओकर राजा! असुर रहे ऊ बाड़ा भारी।
बकुलारूप में आइल रहुए राछछ ओह पोखरा के आरी।। अ0 सर्ग–11–37।।

ठोर रहे छुरी अस ओकर सोएम रहे ऊ अति बलवान।
झपटिके लिललसि कृष्ण के, देखिके ग्वालबाल भइले बेजान।। अ0 सर्ग–11–38।।

लोक पितामह के भी पिता जे बऽनल बा लीला से ग्वाला
गइलन जब तारू के भीतर बक के, भइले आगि के ज्वाला।
तुरत उगिललसि असुर कृष्ण के बिना घाव के मन के काला
टुटि परल खिसियाके कृष्ण के मारे खातिर ठोर के भाला।। अ0 सर्ग–11–39।।

रहे झपट्टा जसहीं मारत तसहीं हरिजी धइले ठोर
ग्वाल बाल के देखते देखते बिना लगवले तनिको जोर।
खेल खेल में असुर के फरले ओसही हरिजी दुनो ठोर
जइसे केहू मोथा फारे, देखि देवन के भइल अँजोर।। अ0 सर्ग–11–40।।

बारहवें सर्ग में ब्रह्माजी का बालक श्रीकृष्ण द्वारा अघासुर के वध से भ्रम में पड़कर उनके भगवान होने की परीक्षा लेने एवं भगवान श्रीकृष्ण की माया की प्रबल शक्ति से उनके द्वारा हरे गये बछड़ों,ग्वालबालों के रहते ठीक वैसे ही बछड़ों,ग्वालबालों के अतिरिक्त उनके जैसे कई ब्रह्माओं द्वारा भगवान के चतुर्भज रूप की स्तुति करते देख उनुका मोह,भ्रम टुट जाता है। हृरण्यगर्भ ब्रह्मा भगवान के चरणारविन्द में स्वर्णखम्भे के समान गिरकर भगवान की स्तुति करते हैं। लोक पितामह की दिव्य काया विशुद्ध सुवर्णमय है–''हिरण्यगर्भः समवर्ताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्...''ऋग्वे010–121–1

देखते ही भगवान के कुदले नीचे वाहन हंश से ब्रह्मा।
गिरले हरि के गोड़ प तब लागल गिरल सोना के खम्हा।। अ0सर्ग–12–61।।

छुवले चरण कमल भगवान के चारो मुकुट सटाके बिधना।
लागे दुगो कमल बा डुबल जल में लोर बहवले एतना।। अ0सर्ग–12–62।।

भगवान के भक्तिभाव से गद्‌गद् ब्रह्माजी लोकपितामह के दिव्य पद को तुच्छ समझकर भगवान से गोकुल के किसी वन में कोई भी जन्म देने का आग्रह करते हैं। उनका यह आत्मनिवेदन किस भक्त का हृदय उद्वेलितकर उसकी आँखों को अश्रुपूर्ण नहीं कर देगा।

एह से मुकुन्द कवनो वनवा में गोकुल के
जनम कवनो लीहीं अस होखे सौभाग जी।
काँहे कि पदरज रउरा कवनो प्रेमी के
पड़ित जरूर, दीहित राउर अनुराग जी।। अ0 सर्ग–12–112।।

तेरहवें सर्ग में ग्वालबालों के साथ वन में गायों को चराने,वन की शोभा का आनन्द लेने तथा गोपों के आग्रह पर बलराम जी के साथ मधुर–सुगन्धित ताड़ के फलों से वंचित रखनेवाले बलवान असुर धेनुकासुर के वध का प्रसंग है। अपने घरों के देहरी पर खड़ी होकर गोपियाँ गायों को चराने वन जाते हुए भगवान के मुखारविन्द के मकरन्द का इस प्रकार आस्वादन करती हैंः–

राहि के दुनो ओर खाड़ गोपी रहुइ सन कृष्ण के ताकत।



www.bhojpurisahityangan.com

तिरछी नजर मिला क़बो देत रहन त प्रेम के रहुइ छाकत।। अ0 सर्ग–13–09।।

वन की शोभा देख श्री को श्री देने वाले कन्हैया आनन्दमग्न होकर मोरों के साथ नाचने लगते हैं।

नाचत मोरन संग नटवर कबो ठुमुक ठुमुक के रहुवन नाचत।
नाचके सोरि के सोझा मोर के नाचल रहुए फीका लागत।। अ0 सर्ग–13–44।।

वन में बलरामजी के हाथों धेनुकासुर के उद्धार के बाद जब नन्दलाल घर लौटते हैं तो उनके इतनी अल्पावधि में ही विरहतापानुतप्त गोपियाँ भगवान के अधररस का दूर से मानो आस्वादन कर अपनी विरहवेदना को शान्त करती हैं। दोनों भाई भी गोपियों के सुन्दर,पुलकित वदनप्रसून से झरते विनय–प्रेममयपराग, उनकी तिरछी चितवन तथा लज्जास्निग्ध हँसीरुप धन को चुन चुन कर अपने मनप्रांगण में संजोये जाते हैं।

गइयन के खुर से धुर पऽरल रहुए कृष्ण के अँइठललट पर
माथ प मोर मुकुट केशन में,वन के फूल सजल नटखट पर।
मुँह पर मधुर मनोहर मुसुकी, चितवन चारू,चित्र अंगपट पर
रहन बजावत मुरली मधुर मधुर श्रीकृष्ण बिरज चौखट पर।। अ0 सर्ग–13–76।।

अइली निकलि ढेर गोपी बृज के बहरी सुनि धुनि वंशीके।
तरसत रहे नैन उनुकर कब से दरसन खातिर अंशी के।। अ0 सर्ग–13–77।।

नृप! मुकुन्द के मुखारविन्द से निकलत मधुर मधुर मकरन्द।
पीके नैन रूपी भौंरन से दिनभर बऽढ़ल बिरह ज्वलन्त।
कइली शान्त बिरज के गोपी, फइलल कृष्ण के प्रेम सुगन्ध।। अ0 सर्ग–13–78।।

विनय,प्रेममय तिरछी चितवन,हँसी लाज संग झरत गोपीन के।
कान्हा, बलदाऊ ढुकले बृज में गोपीधन ई बिनि बिनिके।। अ0 सर्ग–13–79।।

चौदहवें एवं पन्द्रहवें सर्ग के सर्ग संख्या 15.1 तक बालश्रीकृष्ण द्वारा महाविषधर कालियनाग के दमन की कथा है। यमुना–कुण्ड के अमृतसम जल को अपने सान्द्र,अचूक मारक गरल से प्राणियों के लिए सदा अशुद्ध–क्षुब्ध–क्वतिथ कर प्राणघाती बनानेवाले फणिराज कालिय को उसके सहस्रमुख फण पर नृत्यमात्र से नन्दनन्दन श्रीकृष्ण पराभूत कर देते हैं। अपने पति कालिय के प्राणों के भय को भाँपकर नागपत्नियों की विनय–ज्ञानानुबद्ध स्तुतियों से प्रसन्न होकर अपनी कृपा सहित गरूण से अभय प्रदान करते हुए श्रीकृष्ण उसे पुनः रमणक द्वीप भेज देते हैं। उल्लेख्य है कि तार्क्ष्यपुत्र गरूण के भय से आकर वह महागरलधारी कालिया सौभरि ऋषि से गरूण को मिले शाप के कारण गरूणागम्य उक्त यमुनाकुण्ड या दह में शरण ले रखा था। भूलवश उस गरल–गलित–विकृत जल को पीने से मृत गऊ,ग्वालों को जिन्दा कर कन्हैया कालिय कंटक से सदा के लिए यमुना को मुक्त करने के लिए विषोद्वेल्लित तप्तकुण्ड में कूद पड़े थे। ऐसा जानकर नन्द,यशोदा एवं गोपियाँ अपने प्रिय कन्हैया के लिए चित्कार कर मूक्षित हो जाती हैं। कुछ अपने प्राणोत्सर्ग के लिए जब उस कुण्ड में कूदने के लिए उद्यत होती हैं तो वहाँ बाद में बाबा नन्दादि संग पहुँचे बलरामजी ऐसा करने से उन्हें रोकते हैं।

गोपीन के मन सदा रहत रहुए भगवान के प्रेम में रऽमल
याद करत रहुई जा हरदम हरिजी के सौहार्द्र सुकोमल।
चाटे खातिर उनुके मधुर अधर पर नेह के माखन जऽमल
सदा फेर में रहत रही जा, तबो रहे उनुकर मन अऽमल।। अ0 सर्ग–14–33।।

लेकिन जब देखलीजा करिया साँप श्याम के डँसले बा।
कमल से कोमल प्रियतम देह के अँइठिके खुबे कसले बा।



www.bhojpurisahityangan.com

भइली जा अचेत अइसे जइसे केहु प्रान निकसले बा।। अ0 सर्ग–14–34।।

बाबानन्द के जीवन प्राण त कृष्ण ही रहुवन सुनी भुआल
लगले ढुके कालियदह में तब कइले बलराम कमाल।
समुझा–बुझाके कतनन के, कतनन के धइके चुरूकी, बाल
कतनन के हिय में बिआपिके रोकले होखल काल के गाल।। अ0 सर्ग–14–37।।

पन्द्रहवें सर्ग में ही श्रीकृष्ण के द्वारा व्रजवासियों को भीषण दावानल से बचाने तथा प्रलम्बासुर के उद्धार की कथा है।

सोलहवें सर्ग में ऋतु वर्णन है। वसंत,गर्मी,पावस तथा शरद–ऋतु का व्यासजी द्वारा किया गया वर्णन बिल्कुल नैसर्गिक एवं मनोहर है और मनुष्य की विभिन्न प्रवृत्तियों से प्राकृतिक घटनाओं की जैसी सटीक उपमा, उपमानता या उपमिति व्यासजी ने दी है, वह सम्भवतः अभूतपूर्व एवं अनुपम है। यद्यपि आप,हम व्यासजी के प्रकृति एवं विभिन्न ऋतुओं के वर्णन एवं उपमा–उपमानादि की साधर्म्यता के निदर्शन की उपजीव्यता को आदिकवि वाल्मीकिप्रणीत रामायण के किष्किन्धाकाण्ड में श्रीराम द्वारा अपनी प्राणवल्लभा जनकतनया सीता के वियोग में प्रत्यक्षानुभूत वर्षर्त्वादि के विरहजन्य वर्णन में अनुसंधित कर सकते हैं। परन्तु कई प्रतिमानों में व्यासजी का ग्रीष्म–पावस–शरदऋतु वर्णन निसर्गतः मौलिक एवं प्रशंसनीय है। इस संबंध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल एवं आचार्य बलदेव उपाध्याय के विचार व्यासजी के ऋतुवर्णन की चारूता व नैसर्गिकता का पुष्टीकरण हैं। रामचरितमानस के पावस–शरद के वर्णन के संबंध में इन दोनों विद्वानों ने स्पष्टतः कहा है कि गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस के सुप्रसिद्ध वर्षा तथा शरदऋतु वर्णन का बहुत कुछ भागवत से लिया है। व्यासजी के शब्दों में –

'' निशामुखेषु खद्योतास्तमसा भान्ति न ग्रहाः।
यथा पापेन पाखण्डा न हि वेदाः कलौ युगे।।
लोकबन्धुषु मेघेषु विद्युतश्चलसौहृदाः।
स्थैर्यं न चक्रुः कामिन्यः पुरूषेषु गुणिष्विव।।''

अस्तु! मैंने भी व्यासजी के ऋतु–अवलोकन में अभिव्यंजित प्रकृति, सामान्य जनजीवन एवं परोपकार–वैराग्याभिषिक्त मानवजीवन के वैशिष्ट्यों से आहरित उपमा–उपमानों की चारूता से चमत्कृत ग्रीष्म–पावस–शरद ऋतुओं का यथामति इस प्रकार वर्णन किया है।

ग्रीष्म ऋतु का वर्णन तथा उसमें मनुज,हिरण आदि वन्यजीवों की गतिविधियाँः–

माया से गोपाल–भेष में खेलत रहन कान्हा, बलराम
वासंती गरमी से जागल प्राणीन मन के सूतल काम।
सूनर वृन्दावन त भईल अरु मनमोहक छटा के धाम
कारण कि एह वृन्दावन में रहत रहन कान्हा, बलराम।। अ0 सर्ग–16–02।।

दिन में लूक बहे पछुआ से सांझि खा पछुआ गति रहे रूकत
पछुआ से तनी रहे आराम लेकिन पुरूआ जब ऊठे झकोरत।
बहे त मिले आराम जाये खरूआइ त रहे पसेना चूवत
हउलि से ऊखी,बीखी लेसला से कामी रहन ना नारि के छूवत।। अ0 सर्ग–16–03।।

दिन भर होत रहे दवँरी गधबेर में बइठसु लोग दलानी।
घूघ काढ़िके पनपिआव लेके रहुई जात दलानि जननी।। अ0 सर्ग–16–04।।

हुक्का पानी, बतकूचन,जेवनार लेके लोग जाए खरिहानी।
चइत में बढ़ल मदन पर कृषक के भारी रहुए खेती,किसानी।। अ0 सर्ग–16–05।।



www.bhojpurisahityangan.com

सांझि खा गरमी के सूरुज ओढिके़ चादर  चम्पइया लाली।
लागसु  पुराकाल के राजा  छोड़िके राज, काज, जंजाली।
वाणप्रस्थ में जात होखसु छोड़ि चमकत रंग,सभे खुशहाली।। अ0 सर्ग–16–06।।

वनपशु, गईंड़  जनावर रहन जे वन, सरेहि भा कतहूँ चऽरत।
ले ले आपन आपन लेहड़ा निजगुत जगहि के रहुवन धऽरत।। अ0 सर्ग–16–07।।

वृन्दावन  भा  अउर गाँव जे रहुवन नदी, जलाशय   भीरी।
राति बीते सुख से उनुकर बहला से नमी सहित झिरि झीरी।। अ0 सर्ग–16–08।।

चूहचूहिया बोलते उठिके नारी, नर रहुवन काम में लागत।
नाद प गरू चढ़ाके, दूहिके पशुधन रहुवन  वने  चरावत।। अ0 सर्ग–16–09।।

होत फजीर बहे झूर झूर सुखकर हावा सरेहि अरू वन में।
मिलत रहे आनन्द परम प्राणीन के ताव से टघरल तन में।
राम, कृष्ण के सूरति निहारत रही जुड़ात ना गोपी मन में।। अ0 सर्ग–16–10।।

भाँति  भाँति  के  हरिन चौकड़ी मारत रहुवन करत ढ़िंठाई
कहीं  सुस्त  पगुरात मृगा के देहि से देहि के करत दराई।
मृगी  रही  खझुलावत सींघि से  नैन प्रीति के देत चिन्हाई
कतहूँ  नवही  हरिन  लड़ावत सींघि करसु बल के अजमाई।। अ0 सर्ग–16–19।।

वर्षाऋतृ वर्णनः

जेठ के गरमी दुख से बीतल बरखा रितु के चढ़ल आसाढ़।
सोन्ह महक ऊठल जब भूँई पर पहिला रिमझिम परल फुहार।। अ0 सर्ग–16–35।।

दुपहरिया  तक घाम, छाँह, बेरा  बीतला  पर नील गगन में।
बिजुली रहि रहि चमके जब उमड़त घुमड़त बदरी के तन में।
लागे  चमके  दाँत  हँसे  जब  प्रेयसी,   प्रेमी आलिंगन में।। अ0 सर्ग–16–36।।

गरज  गम्हीर  बुझाए   जथा  नगाड़ा  बड़हन   बाजत  होखे।
कड़क जथा तिट तिट तिट तिरकिट बड़ तबला पर बाजत होखे।। अ0 सर्ग–16–37।।

बरखा रितु में साँझि खा बदरी से जब होला घना अन्हार
ग्रह, तारा  ना लउके, पर भगजोगनी जइसे हारि के हार।
लउकेली सन, पाप के कारण ओसहीं कलियुग में परचार
होला पाखण्डीन  के मत के, रहे ना वैदिक मत बरियार।। अ0 सर्ग–16–42।।

लहलहात  रहुवन  अनाज से भऱल पुऱल खेत चारो ओर
बढ़िया  फसल देखिके होत रहन किसान आनन्द विभोर।
पर बा सभकुछ दइब के उपर ई ना जानि धनी, सूदखोर
रहुवन जऱत  कि  अब ना रहिहें पंजा में गरीब, कमजोर।। अ0 सर्ग–16–46।।



www.bhojpurisahityangan.com

बरखा रितु में लहर जलधि के बढ़ल रहे असहीं समीर से
अब ऊ अउरी भइल क्षुब्ध नदियन के उमड़त ढुकत नीर से।
ओसहीं जइसे योगी– हिय में बँचल वासना के खमीर से
होला उथल पुथल अइला से विषयक्षीर हियघट में फीर से।। अ0 सर्ग–16–48।।

इसी प्रकार शरद ऋतु के सौन्दर्य एवं निर्मलता का वर्णन तथा मानवजीवन के विभिन्न कार्यकलापों से सम्बद्धता,साम्य आदि की परिकल्पना व्यासजी के अप्रतिम काव्य प्रतिभा का चूणान्त निदर्शन हैः–

शरद ऋतृवर्णनः–

''व्योम्नोऽब्दं भूतशाबल्यं भुवः पंकमपां मलम्।
शरज्जहाराश्रमिणां कृष्णे भक्तिर्यथाशुभम्।। श्रीमद्भा0 10–20–34।।

शरदर्कांशुजांस्तापान् भूतानामुडुपोऽहरत्।
देहाभिमानजं बोधो मुकुन्दो व्रजयोषिताम्।। श्रीमद्भा0 10–20–42।।

आश्लिष्य समशीतोष्णं प्रसूनवनमारूतम्।
जनास्तापं जहुर्गोप्यो न कृष्णहृतचेतसः।। श्रीमद्भा0 10–20–45।।

गावो मृगाः खगा नार्यः पुष्पिण्यः शरदाभवन्।
अन्वीयमानाः स्ववृषैः फलैरीशक्रिया इव।। श्रीमद्भा0 10–20–46।।

वणिङ्मुनिनृपस्नाता निर्गम्यार्थान् प्रपेदिरे।
वर्षरूद्धा यथा सिद्धाः स्वपिण्डान् काल आगते।।श्रीमद्भा0 10–20–49।।

महर्षि व्यासजी के इन श्लोकों के निहितार्थ की मैंने अपनी अल्पकाव्य समझ से इस प्रबंध में इस प्रकार भावाभिव्यन्जना प्रस्तुत की है।

सुभग शरदरितु कइलसि नाश आकाश के बदरी,पांकी थल के
बरखा रितु में बढ़ियाइल जन्तुन के मरलसि बिना गरल के।
अरू मरलसि मटमइलापन सरिता, पोखर, तलाव के जल के
ओसहीं जइसे भगवद्भक्ति हटावे पुरूष के हिय के मल के।। अ0 सर्ग–16–72।।

जल ही जेकर हउए सभकुछ देके बदरा ओकर दान
लगले शोभे नील गगन में यथा कपास के उजर थान।
ठीक ओसहीं जइसे त्रिऐषणा,पाप मुक्त मुनि विरज,सुजान
शोभेलन जा परम शान्ति के अनुभव करत,विगत अज्ञान।। अ0 सर्ग–16–73।।

घाम होत रहुए दिन में लोगन के खातिर अति दुखदायी
पर कुआर में राति खा शशि दुख हरत रहन देके ठंढाई।
ओसहीं दुख देहाभिमान के ज्ञान से दूर करेले कन्हाई
अउर हरेले हरि गोपीन के बिरह के दुख तुरिके तन्हाई।। अ0 सर्ग–16–80।।

विदित सुनिश्चित वेद अर्थ से सात्विक चित्त शोभेला कइसे।
शरद में मेघरहित नभ राति खा जोन्हींन से शोभे नृप जइसे।। अ0 सर्ग–16–81।।



www.bhojpurisahityangan.com

जइसे जदुपति कृष्ण शोभेलन जदुवंशीन बिच पृथिवी तल पर।
ओसहीं पूर्णचन्द्र जोन्हींन बिच शोभे लगलन गगन पटल पर।। अ0 सर्ग–16–82।।

हरिनी, धेनु, नारि, चिरईं भइली रितुमती शरद रितु पाके
हरिन, साँढ़, नर, खग परले जा फेरा में इनिका ललचाके।
ओसही जइसे फल समर्थ नर के कईल सारा किरिया के
भा जइसे सट से सटि जाला लोहा चुम्हुक से हहुआके।। अ0 सर्ग–16–84।।

जइसे डाकू, चोर के छोड़िके सभ जन राजा के अइला से।
निरभय हो जाले,ओसही बस कुमुदिनी छोड़ि रवि उगला से।
खिल गइले सँवसे प्रकार के कमल, सुगन्ध उठल पोखरा से।। अ0 सर्ग–16–85।।

जथा साधना कके सिद्ध देवादि होखेलन समय के पाके
ओसही बनिया, मुनि, राजा, स्नातक देखिके रितु बरखा के।
रूकल रहन जे एक जगहि पर अब रितुशरद निरापद पाके
आगे बढ़लन जा ओहिजा से, लगलन काम–काज में जाके।। अ0 सर्ग–16–87।।

सतरहवें सर्ग में वेणुगीत है। कृष्ण पर अनुरक्त गोपियाँ प्रियतम के अधरामृत से सटकर बजनेवाली वंशी द्वारा उनके अधर के रस को पूरी तरह चूस लिए जाने से सशंकित हुए जाती हैं। वे कहती हैं कि मदनमोहन के सौन्दर्य पर हम ही नहीं, देवांगनाएँ भी इतनी अनुरक्त हैं कि कृष्ण को देखने की उत्कण्ठा में उन्हें अपने तनाभरण के गिरने,सरकने की भी सुध–बुध नहीं रहती। बेचारी वन की भीलनियाँ तो घास पर मदनमोहन के तलवे में प्रेयसियों के उरोज से लगे केशर को अपने सुरत संवेदनशील गाल,उरोजादि पर मलकर अपनी सुरत–खुमारी मिटाती हैं।

अतने ना, जब सरग के जुवती देखेलीजा मदनमोहन के
जेकर सुनराई जबरन मोहेला जुवतीन के हिय, मन के।
अउर सुनेलीजा जब उनुका मुरली के सुमधुर गीतन के
बइठल बइठल ही विमान पर सुध बुध खो देली तन,मन के।। अ0 सर्ग–17–25।।

सखी जनाइल ई कइसे? तब कहली जुवतीन के जब मन में
जागेला मोहन से मिलन के प्रबल चाह मन के आंगन में।
धीरज खोके मूरछित होलीजा तब सुधि ना मन,ना तन में
कि जूड़ाफूल गिरल, कि साड़ी सरकल कमर से पृथिवी तल में।। अ0 सर्ग–17–26।।

आहि ए सखी! ई भीलिनी बाड़ी सन धनि,धनि,गदराइल नारी
देखिके रसिया के जब इन्हनि के हिय में धरेला प्रेम बेमारी।
तब प्रेयसीन के ऊठल कुच के केशर सटल कृष्ण एँड़ि आरी
घासि से गाल, उरोज प मलिके झारेली सन सुरत खुमारी।। अ0 सर्ग–17–32।।

सतरहवें सर्ग में ही गोपियों के द्वारा श्रीकृष्ण को पतिरूप में पाने के लिए यमुना तट पर रेत की काली बनाकर श्रद्धा–भक्ति सहित एक महीने तक महामाया कात्यायनी के कठिन व्रत का अनुष्ठान करने का प्रसंग है। व्रत–अनुष्ठान पूरा होने पर उनका बिना अधोवस्त्र के यमुना में स्नान करने की जानकारी होने पर श्रीकृष्ण गोपियों के सारे वस्त्र उठाकर तट पर कदम्ब के एक वृक्ष पर चढ़ जाते हैं। गर्दन भर जल में बहुत देर तक गोपियों के ठंढ से ठिठुरने पर भी श्रीकृष्ण द्वारा वस्त्र नहीं देने पर गोपियाँ वस्त्रहीन अवस्था में कराभरण का सहारा लेकर लज्जा निवारण का प्रयास करती हुई यमुनाजल से बाहर आती हैं। तब श्रीकृष्ण गोपियों के वस्त्रादि उन्हें देकर उनके इस



www.bhojpurisahityangan.com

हद तक अपने समक्ष लोकलज्जा के समर्पण की प्रशंसा करते हुए उस महान व्रत की सिद्धि के उद्‌घोष के साथ आगामी शरदपूर्णिमा की चार दिव्य रात्रियों में उनके साथ महारास में प्रवृत्त होने का आश्वासन देते हैं। गोपियों के चीरहरण का प्रसंग लौकिकतः बेहद संवेदनशील है, परन्तु नितरां प्रगाढ़ प्रेम तो इस हद तक का समर्पण और बलिदान मांगता ही है। प्रेम में इस हद की परीक्षा लेने के साथ ही श्रीकृष्ण आर्ष परम्परा में स्तुत स्नानमर्यादा की शिक्षा भी गोपियों को यह कहते हुए देते हैं कि बिना अधोवस्त्र नदी आदि जलाशयों में स्नान करना अपने शरीर के संवेदनशील अंग की सुरक्षा की अनदेखी के साथ साथ उस नदी,जलायश आदि के आधिदैविक मर्यादा एवं जलतत्व के अभिमानी देवता वरूणदेव के मर्यादा का भी उल्लंघन है। अपने कठिन व्रत की सफलता, अपने प्रियतम के प्रेम में सर्वतोभावेन समर्पण की परीक्षा में उत्तीर्णता,हँसी विनोद में दैनिक आचरण की मर्यादा का पालन करने की शिक्षा एवं ईश्वरों के भी ईश्वर परन्तु अपने प्रेमसर्वस्व प्रियतम श्रीकृष्ण से शरदपूर्णिमा की दिव्य रात्रि में श्रुत्योल्लसित उस '..रसो वै सः' के आत्यंतिक दिव्यप्रेमरस की परा अंतरंगतास्वरूपी महारास का आश्वासन पाकर गोपियाँ अपने चीरहरण को प्रियवरण मानती हुई आनन्द से फूले नहीं समा रही थी। इस प्रसंग में भागवतीय कथानुरूपा मेरे इस प्रबंध में आयी गोपियों की आनन्दजा मनोदशा की व्यंजना को पाठक शायद इस पद में महसूस कर सके।

देखिके बिनु परिधान नहात गोपीन के कान्हा चीर चोरवले
कइले हँसी मसखरी, कपट क्रीड़ा से गोपीन के भरमवले।
बिनु पहिरन अपना सोझा प्रेयसीन के लाज संकोच हटवले
तबो ना मनली दोष, जदपि कठपुतरी के अस नाच नचवले।। अ0 सर्ग–17–64।।

आगे सतरहवें सर्ग में ही यज्ञकर्ता ब्राह्मणों द्वारा श्रीकृष्ण के मांगने पर भी भोजन नहीं देना, परन्तु उनकी सती साध्वी ललनाओं के द्वारा सम्मानपूर्वक भगवान को स्वादिष्ट भोजन परोसना, उनके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उनकी स्तुति करना, श्रीकृष्ण का उन्हें आदर–मान,सम्मान देने के साथ ही उनके पतियों का उनके प्रति और अधिक प्रेम का उपहार देना तथा अपने कृत्य पर ब्राह्मणों का लज्जित होकर अपने को धिक्कारने आदि का प्रसंग है। सौन्दर्य एवं कमनीयता से उफनती द्विज ललनाएँ अनन्तलोकों के अपने से अभिन्न, स्वयं जगत्–उपादनस्वरूप अन्नादि से पोषण करनेवाले नन्दलाल श्रीकृष्ण की लीलया भूख से पीड़ित होकर अन्न की मांग की बात सुनते ही प्रेमजल से बलखाती नदियों की तरह चार प्रकार के पकवानरूपी चतुरोर्मि सहित प्रेमोदधि श्रीकृष्ण से मिलने के लिए दौड़ पड़ती हैं। अपने अपने पतियों की मर्यादा की चौखट लांघकर परम रसराज श्रीकृष्ण से सुस्वादु व्यन्जनों के साथ मिलनेवाली द्विज ललनाओं के हृदयानुराग इस प्रबंधकाव्य में कुछ इस तरह व्यंजित होते हैः–

बहुत दिनन से सूनत रहुई प्रभु के मधुर, मनोहर लीला
नैन विप्र नारीन के रऽहत रहुए हरि दरसन ला गीला।
जब सुनली जा आइल बाड़न निगिचे ही प्रियतम रंगीला
चलली श्याम कींहाँ जइसे सरिता लोगि सागर ला निकलींला।। अ0 सर्ग–17–94।।

चार तरह के भोजन बहुत सुस्वादु रही जा लेके आईल
सुनि सुनि पहिले से श्रीकृष्ण के रूप, माधुरी रही लोभाईल।
देखली जा बाड़न अशोक वन मे श्रीकृष्ण घूमत अगराईल
साँवर तन पर पीताम्बर से श्याम प शोभा अउर बा आईल।। अ0 सर्ग–17–95।।

गर में बा वनमाला, कान में कमल के कुण्डल बाटे डोलत।
मोरपंख के मुकुट माथ पर मन्द मन्द मुसुकान बा मोहत।
अंग अंग पर धातुरंग के चित्र से नट अस बाड़े शोभत।
कोमल गाल प घुँघुराइल लट लरकत बा प्रेयसीन के जोहत।। अ0 सर्ग–17–96।।

प्रियतम के लीला, गुण अब तक कान से सुनत रही द्विजनारी
सुनि सुनि उनुके प्रेम के रंग में रहुई रंगले मन के साड़ी।



www.bhojpurisahityangan.com

अब नैनन के राहि से हिय में धइके कृष्ण के भरि अँकवारी
जलन बुतवली यथा प्राज्ञ में हम, हमार रूप मिटे विकारी।। अ0 सर्ग–17–97।।

अठारहवें सर्ग में इन्द्र के सर्वनियन्ता होने के अभिमान को तोड़कर गोपों को संतुलित पर्यावरण के साथ साथ जीविकोपार्जन के लिए काष्ठ,ईंधन,चारा,स्वच्छ जल आदि आवश्यक संसाधन उपलब्ध करानेवाले गोवर्धन पर्वत को देव के रूप में कृष्ण द्वारा प्रतिष्ठा करने पर इन्द्र की आँखे भयंकर कोपगर्हित हो जाती हैं। तब उनके क्रोधाग्नि से तप्त व उद्वेलित मरुद्गणाभिमानी अभ्र–मेघावरण और अधिक जलवाष्पार्द्रभूत एवं विक्षुब्ध होकर प्रलयंकारी वर्षा एवं मारक तूफान–ओलावृष्टि के रूप में व्रजविनास के लिए उद्यत हो जाता है। ऐसी विषम परिस्थिति में अपने प्रिय व्रजजनों एवं गोवंश के रक्षार्थ मात्र सात वर्ष की अवस्थावाले श्रीकृष्ण लगातार सात दिनों तक गोवर्धन पर्वत को अपनी कनिष्ठांगुलि पर उठाये रखकर व्रजजनों एवं गायों आदि की रक्षा करने के साथ ही उनके नारायणत्व से अनभिज्ञ तथा अपने को जीव जगत का परम नियन्ता माननेवाले इन्द्र का अहंकार धूलधूसरित कर देते हैं, जिसका यथामति वर्णन मैंने इस प्रकार किया है।

इन्द्र के जब मालूम भईल पूजा उनुकर अब बन भईल।
भइले बहुत कुपित गोपन पर आँखि कोप से तनि गईल।। अ0 सर्ग–18–43।।

सांवर्तक नामक गण के कहले कि बृज पर करऽ चढ़ाई
देखऽ एह जंगली गोपन पर धन,जस,मद के बा अधिकाई।
मरणशील एह कृष्ण के बल पर बन कइले सन मोर पूजाई
देखिहें सन जब कोप हमार तबे ही एह मूर्खन के बुझाई।। अ0 सर्ग–18–44।।

कृष्ण बहुत नादान ह, बकबादी आ बहुत हटे अभिमानी।
मुरूख बड़ा रहलो पर अपना के समुझेला बड़का ज्ञानी।। अ0 सर्ग–18–46।।

हवुए सोएम कवर मउवति के फिर भी लेके ओकर सहारा।
कइले बाड़न सन हमार अवहेलना बृज के अहीर ई सारा।। अ0 सर्ग–18–47।।
एक त होत रहन सन धन के निशा में चूर चूर अहिरान।
ओह पर अउर बढ़ावा देले बा इन्हनीं के कृष्ण नादान।। अ0 सर्ग–18–48।।

जा लोग अब तूरऽ जा अहिरन के श्रीमद, बल के अभिमान।
हमहूँ अतिबलवान मरूद्गण लेके पीछे से प्रस्थान।
कऽरत बानी ऐरावत पर कि बृज के ना रहे निसान।। अ0 सर्ग–18–49।।

उन्नींसवें सर्ग में गोपों का कृष्ण के ईश्वरीय प्रभाव के बारे में बातचीत,इन्द्र एवं कामधेनु द्वारा कृष्ण की स्तुति एवं दिव्य अभिषेक का उल्लेख है। भगवान इन्द्र को सचेत करते हैं कि देवताओं का अधिप होने से वे यह न समझें कि वे पूरी सृष्टि का नियन्ता एवं सर्वेसर्वा हैं। इसी सर्ग में वरूण देवता के एक सेवक द्वारा नन्दजी का अपहरण कर उन्हें वरूणलोक ले जाने पर भगवान जब वहाँ जाते हैं तो वरूण अपने सेवक की गलती पर पश्चातापपूर्वक नतमस्तक होकर भगवान से क्षमा मांगते हैं। वरूण सहित सभी को अपने पुत्र श्रीकृष्ण के समक्ष अत्यंत सभीत, सादर नतमस्तक होता देख नन्दजी को परम विस्मय होता है एवं वे जान जाते हैं कि उनका पुत्र ईश्वरों का ईश्वर,सर्वनियन्ता परमब्रह्म है। नन्दजी के वापस व्रज आने पर उनके द्वारा प्रत्यक्षतः देखे गये अपने पुत्र के नारायणत्व की बात बालसखाओं को भी मालूम होने पर की उनकी इच्छा पूरी करने के लिए भगवान उन्हें अपने परमधाम का दर्शन कराते हैं, जो मुमुक्षुओं एवं योगियों के परम लक्ष्य ब्रह्मज्योति से भी परे एवं उच्च है। इसी सर्ग में शंखचूण नामक असुर एवं सुदर्शन नाम के विद्याधर की अजगर योनि से उद्धार का प्रसंग है। नन्दजी को लीलनेवाले अजगर



www.bhojpurisahityangan.com

पर श्रीकृष्ण के पैर का स्पर्श होते ही अजगर योनि को छोड़कर सुदर्शन नाम का विद्याधर प्रकट होकर भगवान की स्तुति करने के बाद अपने लोक को जाता है।

श्रीशुकदेवजी कहनी सुनिके स्तुति इन्द्र के श्रीभगवान।
बिहँसत मेघ नियन वाणी से कहनी सुनऽ इन्द्र बलवान।। अ0 सर्ग–19–43।।

भइल रहऽ तू अपना श्री,ऐश्वर्य के मद से अति मतवाला
जानत ना रहुवऽ तहरो बा केहू नियन्ता उपरवाला।
एह से मख तोहार कइनी हम भंग कि पड़े सत्य से पाला
आ हम तोहरा याद रही सभ तन्त्र के परम नियन्त्रणवाला।। अ0 सर्ग–19– 44।।

वरूणलोक में नन्दजी देखनी वरूणैश्वर्य इन्द्रियातीत।
अरू देखनी ओह लोक के वासी होके चकित, सप्रेम,विनीत।
उनुका पूत कृष्ण के नइ नइ बाड़े कर्त प्रणाम सभीत।। अ0 सर्ग–19– 71।।

बीसवें सर्ग से रासपंचाध्यायी प्रारम्भ होकर चौबीसवें सर्ग में गोपियों एवं श्रीकृष्ण के महारास के साथ पूर्ण होता है। जैसा कि पूर्वोल्लेखित है श्रीकृष्ण को पतिरूप में पाने के लिए भगवती कात्यायनी का व्रत–अनुष्ठान पूर्ण होने पर गोपियों को श्रीकृष्ण से आगामी शरदपूर्णिमा की दिव्यरात्रि में उनके साथ रास–नृत्य कर उनकी मनोकामना पूर्ण करने का आश्वासन मिला था। शरदपूर्णिमा को जब पूर्व दिशा में अपने शीतल,मुदुल किरणों को विकिरित करते हुए हिमकर प्राच्यक्षितिज से उदीयमान होते हैं और उनकी शीतल किरणें कामिनियों के कमनीय कलेजे में कामाग्नि को जब दीप्त कर चुकी थी, तभी सहसा वृन्दावन से आती हुई श्रीकृष्ण की वंशी की मधुर तान प्रबलवायु की तरह उनके कामोदीप्त कलेजे की आग को बड़वानल बना देती है। अब वे अपने सारे काम–काज छोड़कर भागी भागी श्रीकृष्ण के पास पहुँच जाती हैं। अपने पति आदि स्वजनो के कारण रासस्थल नहीं जा सकने वाली कुछ गोपियाँ अपने प्रियतम श्रीकृष्ण का ध्यान कर उनसे एकाकार हो जाती हैं। अपने अंकाकांक्षिणीं गोपियों को नन्दनन्दन जब रात्रि को निर्जन वन में पर पुरुष के पास जाना अनुचित बताकर घर लौट जाने के लिए प्रेरित करते हैं, तो वे कहती हैः–

चित हरलऽ ए चितचोर!
घरे मन ना लागी?
मन बा तोहरे मे विभोर
घरे मन ना लागी।। अ0 सर्ग–20–62।।

देखते देखत चित तू लुटि लीहलऽ।
बाटे ना करेज दुइगो एगो ही तू दीहलऽ।
नइखे परत डेग,चरन छोड़ि तोहार कमलनयन।।
कइसे जाईं जा बृज खोर।। अ0 सर्ग–20–63।।
घरे मन का लागी।

बीसवें सर्ग में ही गोपियों की अपने सौन्दर्य पर उनके प्रियतम श्रीकृष्ण के मोहित होने की बात भांपकर नन्दनन्दन किसी प्रधान गोपी के साथ उन गोपियों से कहीं दूर चले जाते हैं। व्यासजी ने इस प्रधान गोपी को राधा होने की चर्चा तो नहीं की है, परन्तु कई भागवत मर्मज्ञ अपने वाग्चारुताभिशोभित तर्कोपवन के तर्कप्रसून की वाग्मंजरी के सुगन्ध से पाठक/श्रोताओं को तरबर करते हुए उक्त प्रधान गोपी को राधा होने के रसानन्द से आप्लावित करते हैं। एक्कीसवें सर्ग में वह प्रधान गोपी जब कान्हा को अपने कन्धे पर लेकर चलने की बात कहती है तो कृष्ण के कन्धे पर उसके चढ़ते ही वे अन्तर्धान हो जाते हैं। अब वह गोपी अपने कृत्य पर पछताती हुई फफककर रो पड़ती है। तब तक बाकी गोपियाँ भी वहाँ आ जाती हैं। अब सभी रोती विलखती हुई चन्द्रप्रभा से चटक प्रकाशित उस रात्रि में



www.bhojpurisahityangan.com

इधर–उधर भटकने लगती हैं तथा अपने सामूहिक–गोपिका गीत में कृष्ण की प्रेमभरी बातों को याद कर उन्हें शीघ्र वापस आ जाने के लिए प्रार्थना करती हैं।

कामी मरद नियन मोहन गुहले बाड़न ओह प्रिया के बाल।
होइहें इहाँ लगवले बइठिके फूल प्रिया के लट में लाल।
चुमले होइहें प्रेम से कान्हा एहिजे ओह जुवती के गाल।। अ0 सर्ग–21–38।।

सभ गोपीन के छोड़ि कृष्ण ओह भाग्यवती जवना गोपी के
ले गइल रहले एकान्ता जनली ऊ हम श्रेष्ठ मही के।
काँहें कि बाड़े लोभाइल हमरे में छोडि छाड़िके सभ सुनरी के
देले आदर मान अधिक हमरा ही प्रिति भरल गगरी के।। अ0 सर्ग–21–42।।

वन में विहरत गोपी ऊ भइली मतवारी मद से अपना।
लगली कहे सऽकत नइखीं हम चले फिरे में गोड़ से अपना।
चलऽ तू लेके कान्ह प हमरा के, जाहँवा के होखे कल्पना।। अ0 सर्ग–21–43।।

बात सुनत ई प्रिया के हरिजी कहले ल तू चढऽ कन्हइया।
लगली जसहीं चढ़े कान्ह पर भइले अन्तरधान कन्हइया।
लगली पछताये ऊ गोपी, बन ना होखत रहे रोवइया।। अ0 सर्ग–21–44।।

हाय हाय हे नाथ रमण, हा प्रेष्ठ महाभुज बाड़ऽ काँहवा।
सखा! हईं हम दीन हीन दासी तोहार बाड़ऽ तू जाहँवा।
दरसन आके दऽ हाली आली लगि जा तू हमरा गरवा।। अ0 सर्ग–21–45।।

रही अउर जे गोपी हरि के चरण चिन्ह के अइली खोजत।
उहँवा जहाँ कि अन्तरधान भइल रहले हरि मन के मोहत।
देखलीजा अचेत गोपी के रही जे गिरल मोहन के छोड़त।। अ0 सर्ग–21–46।।

लगली कहे जगऽवला पर ऊ गोपी बात पियार, मान के।
मिलल रहे जे माधव से उनुका के आउर निज गुमान के।
जेकरा कारन हरिजी भइले ओझल उनके कुटिल जानिके।। अ0 सर्ग–21–47।।

सुनिके बात कहल गोपी के अचरज मनली सभे गुजरिया।
गइली खोजत कृष्ण के जहवाँ धप धप चमकत रहे अंजोरिया।। अ0 सर्ग–21–48।।

जब देखलीजा आगे जंगल घना बहुत अरू घोर अन्हरिया।
अइली लवटिके सभ जानी तब हिय में ऊठल लूक लहरिया।। अ0 सर्ग–21–49।।

भइल रहे मन सभ जानी के हरिमय, चेष्टा, बोली हरिमय।
हरिमय होके हरि गुण गावत अतना भइली हरि में तन्मय।
कि आपना ना मन के सुधि तब कहाँ दोसर के सुधि जे तृणमय।। अ0 सर्ग–21–50।।

कृष्णभाव में असहीं डूबल सभ गोपी यमुना तट अइली।



www.bhojpurisahityangan.com

हरि आवन के चाह में डँहकत हरि गुणगान सुनी जे गवली।। अ0 सर्ग–21–51।।

भागवतजी का गोपिका या गोपीगीत अद्‌भूत,अनुपम होने के साथ साथ कई संगीत धुनों पर गेय है जिसे गाकर एवं सुनाकर भागवत प्रेमी कृष्णप्रेमानुराग के अथाह सागर में अनवरत गोते लगाते हैं। अपनी भाषा में मैंने अपनी क्षुद्र क्षमतानुसार उन अमर गीतों को विभिन्न धुनों में भागवत–भृत भाव से अपनी भाषा में पिरोने का प्रयास किया है, जो बाइसवें सर्ग में हैं। इस प्रबंध में गोपीगीत की शुरूआत अंतरा से होती है। उनमें से कुछेक की प्रस्तुति इस प्रकार है:–

22.1 गोपीका गीत।

महिमा बा बढ़ल बृज के तोहरा जनम से
छोड़ि छाड़ि वैकुण्ठ के तब से लक्ष्मी माई।
रहतारी बृज में निसि दिन एही से त बढ़ऽल बाटे
सुनर अपना बृज के सखी आउर सुनराई।। अ0 सर्ग–22–01।।

काहँवा बाड़ऽ प्राणनाथ प्राण लेके गोपीयन के
देके छमादान जुड़ावऽ फिरु से गोपी अँखियन के।। अ0 सर्ग–22–02।।

भइलऽ जाने काहें, काहँवा अन्तरधान हो.....
बेजान तन ही बाटे लगिया।
वन वन भटकत बानी जा ए जान हो....
अब तू आके डालऽ जान रसिया।। अ0 सर्ग–22–03।।

शारदीय पोखरा में खिलेला कमल जे
शोभा ऊ चोरवले बाड़ी सन तोहर अँखिया।
कइले बाड़ऽ घाही बिनु मोल एह दसियन के
ओही अपना अँखियन के बान से तू रसिया।। अ0 सर्ग–22–4।।

कइलऽ हतियारी अँखियन से नाथ हो.....
का छुरी से ही होला हतिया?।। अ0 सर्ग–22–5।।
भइलऽ जान लेके कहँवा अन्तरधान हो......
बेजान तन ही बाटे लगिया।।
वन वन भटकत बानी जा ए जान हो......
अब तू आके डालऽ जान रसिया।।

शरणागत के हवऽ हरि पाप के तू हरे वाला
खान हवऽ माधुरी के श्री के भी श्री देबे वाला।
लक्ष्मी सोएम जेकर सेवा करेली ऊ नन्दलाला
बऽछरून गईयन के पीछे पीछे चले वाला।। अ0 सर्ग–22–15।।

नाग फन पर रऽखलऽ जे कमल अस चरण
ऊहे संघतिया हो।
रखि द हमनी के कुचन प



www.bhojpurisahityangan.com

बुते अगिया हो।। अ0 सर्ग–22–16।।
कहाँवा छोड़िके गइलऽ
सुरतनाथ रसिया हो।
वन में भटकत भईल
दुरगतिया हो।। अ0 सर्ग–22–17।।

जल्दी आ जा भूलिके
हमनी के बतिया हो।। अ0 सर्ग 22–18।।

गोपियों के मन में उदित अहंकारार्क के अस्त हो जाने पर अन्तर्यामी श्रीकृष्ण उनके सामने सहसा प्रकट हो जाते हैं। गोपियों को प्रेम के लिए प्रेम तथा स्वार्थपरक प्रेम में अंतर के साथ अपने को ओझल कर लिये जाने का कारण समझाते हैं जो तेइसवें सर्ग में है।

परगट भइले गोपीन के बिच ओहिजे मनमथ मन मथकारी।
मुसुकी मुखअंबुज पर लेले, वनमाला पीताम्बरधारी।। अ0 सर्ग–23–02।।

आईल देखिके हरि के अबला प्रीति से खीलल नैनन वाली।
ओसहीं उठली जा एके संग जइसे प्रान परत तन हाली।। अ0 सर्ग–23–03।।

कवनो जानी कृष्ण कराम्बुज गील होइ सुहुरावसु हाथे।
चनन लेपाइल हरि कर अंबुंज धइली एक जानी निज माथे।। अ0 सर्ग–23–04।।

पान चबाइल हरि के मुँह से लिहली हाथ में एक गुजरिया।
बिरह से जऱत सखी एक धइली कृष्ण पदांबुज कुच के उपरिया।। अ0 सर्ग–23–05।।

प्रणयकोप बिह्वल एकजानी भउँह चढ़ाके ओठ चबावत।
तिरछी नजर से ताके लगली कृष्ण के, आपन देहि देखावत।। अ0 सर्ग–23–06।।

एक गोपी अपलक नैनन से हरिमुख कमल सुरभि के चूसत।
रही जुड़ात ना जइसे हरि पदपंकज लखिके संत ना उठत।। अ0 सर्ग–23–07।।

एक जानी हरि के ले गइली नैनराहि से हिय में आपना
नैन मूदिके भरि अँकवारी धइली कृष्ण के, भइल आतना।
तन पुलकित,आनंद भइल जे होला योगी के हिय आंगना।। अ0 सर्ग–23–08।।

लेके सभ गोपीन के गइले हरिजी रेती पर यमुना के।
खिऌल कुंद मंदार सुरभि के धूरि से मादक महक उड़ाके।
मधुकर लगले सन मेड़राये गोपी कृष्ण के नियरा जाके।। अ0 सर्ग–23–11।।

शरद पूनम के चंद्र किरिनि से तनिको रहे ना रैन अन्हरिया।
यमुनाजी निज लहर हाथ से रही बनवले रेत अटरिया।
कोमल रहे ऊ कृष्ण के लीला खातिर जस मखमली चदरिया।। अ0 सर्ग–23–12।।



www.bhojpurisahityangan.com

अतना भईल हुलाष दरस पाके प्रीतम के गोपीन चित्त में।
आधि, व्याधि हिय के मीटल जइसे श्रुति विविध कर्म के हित में।
बरणन करत करत आनन्दित होली अंत में ज्ञानामृत में।। अ0 सर्ग–23–13।।

उतराइल असही आनंद में कुच के कुंकुम से बोथाईल।
कृष्ण के बइठे ला ओढ़नी पसरवली जा रेत पर अगराईल।। अ0 सर्ग–23–14।।

ललचत रहेला योगेश्वर लोग बइठसु हरि हिय के आसन पर।
पर ना होले सफल, ऊहे हरि गइले बइठि गोपि डासन पर।। अ0 सर्ग–23–15।।

गोपीन के परिषद में पूजित होके बइठले कृष्ण कन्हाई।
अनुपम शोभत रहन, त्रिलोक के शोभा समता ना करि पाई।। अ0 सर्ग–23–16।।

काम के काम बढ़ावनहार के कइली जा गोपी सम्मान।
बिहँसत प्यार भरल पपनी के दीहली जा समियाना तान।। अ0 सर्ग–23–17।।

कवनो जानी रखली उनुकर पदपंकज अपना गोदी मे।
कवनो जानी कर अंबुज के धइके कहत रही सिसिकी में।। अ0 सर्ग–23–18।।

आह! बाटे कतना सुकुवार सुघर तरवा तोहार ए हरिजी।
कइसे धरबि कोमल कर कमल के काठ नियन उरोज ऊपर जी।। अ0 सर्ग–23–19।।

कृष्ण के प्राकट्य मात्र से चहकती हुई गोपियों की घनीभूत गौर अंगकान्ति मानो चन्द्रमा की चटकप्रभा को फीकी कर अपने प्रियतम को आलिंगन पाश में आने का ईशारा कर रही थी। तभी भगवान कनकमणिवत् दो–दो प्रेमोन्मत्त गोपियों के बीच नीलमणि की तरह ग्रन्थित होकर उनके चिरप्रतीक्षित रासोत्सव–महारास की शुरूआत करते हैं, जो इस प्रबंधकाव्य के चौबीसवें सर्ग में है। गोपियों के प्रेमसर्वस्व क्या, उनका हृदय ही श्रीकृष्ण की यह दिव्य लीला देखिए कि सभी गोपियाँ यही समझती थी कि उनके प्रियतम केवल उनके ही पास हैं।

प्रीति से बाँहि में बाँहि लगवले नारि रतन से कृष्ण घेराईल।
नधले रासक्रीड़ा अति पावन रसमय रसिक सिरोमणि आईल।। अ0 सर्ग–24–02।।

दु दु गोपीन के बिच हरि योगेश्वर भइले परगट राजन्!
डलले हाथ गोपीन के गर में गोपी मण्डल मण्डित साजन।
समुझत रही सभे गोपी खाली हमरे लगे ही हरिजी बाड़न।। अ0 सर्ग–24–03।।

कृष्ण के महारास के समहुत भइल सहस गोपीन से शोभत।
शत शत देव विमान के जमघट लागल नभ में, नभ के तोपत।। अ0 सर्ग–24–04।।

रहन सपत्नीक उत्सुक देवता कि निरखीं नीक से हरिरास।
वश में रहे ना हियरा उनुकर अतना गईल रहन तरास।। अ0 सर्ग–24–05।।

दुंदुभि लागल बाजे सरग के फूल के बरखा होखे लागल।
पत्नी संग गन्धर्व लोग निरमल हरि के जस के भाखे लागल।। अ0 सर्ग–23–06।।



www.bhojpurisahityangan.com

नृत्य करे लगली सभ गोपी, करधनि, घूंघरू, बाजे लागल।
रास में एके साथ हाथ के कंगन खन खन खनके लागल।
मधुर मधुर धुनि होखे लागल,कोमल कमरिया लचके लागल।। अ0 सर्ग–24–07।।

नृत्य करत गोपीन संग अइसे शोभे लगले हरि नन्दलाल।
जइसे पीयर कनक मणीन से शोभे नीलमणी महिपाल।। अ0 सर्ग–24–08।।

नाच घरी गोपी सभ कबहूँ ठुमुकि ठुमुकि गोड़ राखसु आगे।
कबो करसु गोड़ पीछे, लचकत कमर कबो टुटला अस लागे।। अ0 सर्ग–24–09।।

कबो धरसु गोड़ धीरे धीरे, कबो बेग से गोड़ बढ़ावसु।
कबो चाक अस घुमसु,कबहूँ हाथ के भाव हेतु चमकावसु।। अ0 सर्ग–24–10।।

कबो रही मुसुकात कला से कबो भँउह मट मट मटकावसु।
कबो बइठके भाव देखावसु कबो कमर पातर लचकावसु।। अ0 सर्ग–24–11।।

हिलत रहे उरोज गोपीन के चलत, झुकत, बइठत, उठत खा।
घंघरा, चुनरी जात रहे उठि नाचत छाता अस घूमत खा।। अ0 सर्ग–24–12।।

कान के कुण्डल आवत रहुए गाल प,ताल प थिरकत खानी।
बून पसेना के झलकत रहे मुँह पर ओह मेहनत से जानी।। अ0 सर्ग–24–13।।

ढीला भइल केश के चोटी रहे जे तरह तरह से गूहल।
खूल़त रहुए गाँठ नीवी के तबो रही गोपी सभ भूलल।। अ0 सर्ग–24–14।।

गावत गीत, करत तहँ नृत्य गोपिका गोरी रही बिजुरिया।
कृष्ण बहुत तहँ लागत रहुअन साँवर साँवर प्रीति बदरिया।। अ0 सर्ग–24–15।।

रति पुनीत अति,यति–विवेक मति,गति सुमीत संग रहे गोपीन के।
रतिप्रिया जे रही नाचत ओहिजा जोर से गावत रही गीतन के।
उछहल रही ऊ कृष्ण परस से, गीत ऊ बा अजहूँ प्रेयसीन के।। अ0 सर्ग–24–16।।

एकान्तवल्लभ, श्री के प्रियतम
हरि के पाके बृज के गोरी।
गीत गावत लगली विहरे
हरि के मुख चंदा चकोरी।
रहन देले डारि हरि
गोपीन के गर में हाथ डोरी।। अ0 सर्ग–24–24।।

रहे शोभत कान में गोपीन के
बाली नृप! कनक के।
गाल पर लटकत रहे अँइठल
हिलत लट हरि विमल के।। अ0 सर्ग–24–25।।



www.bhojpurisahityangan.com

मुख छटा उनुकर पसेना
बून से रहुए निराली।
रास मण्डल में छमा छम
रही नाचत कृष्ण आली।। अ0 सर्ग–24–26।।

रहे बाजत मधुर पैजनि,
कनक कंगन झनन झन झन।
ताल सुर में सुर मिलाके
रहन गावत मधुप भन भन।। अ0 सर्ग–24–27।।

रास में रसिया के संग
नाचत गोपीन के चोटियन के।
फूल बेला के गिरत
दाना लागत रहे मोतीयन के।। अ0 सर्ग–24–28।।

ज्ञान–वैराग्य के मूर्तिमान स्वरूप एवं जीवन–मुक्त गोस्वामी श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित से कहते हैं कि '...रसो वै सः' श्री कृष्ण उस रास में उसी तरह गोपियों के साथ रासक्रीडा कर रहे थे जैसे अबोध बालक अपनी छाया से खेलता है। इस खेल में नाचती,गाती गोपियाँ जब थक जाती हैं तो दिव्य रासोत्सव के नायक गोपियों की थकान जलक्रीडा से मिटाने के लिए उन्हें लेकर यमुना में उसी तरह प्रवेश करते हैं जैसे कोई मस्त गजराज अपनी हथिनियों को लेकर किसी जलाशय में प्रवेश करता है।

जइसे खेलेऽला राजन बालक अबोध निज छाया से
ओसहीं रमारमण गोपीन के कबो कससु निजकाया से।
कबो हाथ से अंग परस, कबो हँसी करसु बृजजाया से
कबो सरस चितवन से देखसु, कभी ठहाका माया से।। अ0 सर्ग–24–29।।

खूलल जूड़ा बिखरल केश बढ़वलसि गोपीन के सुनराई।
लागत रहुए उमड़त करिया बदरी नेह नीर बरसाई।
नदी प्रीति के उफनत फिरू ओहि प्रितिसमुन्दर में मिल जाई।। अ0 सर्ग–24–31।।

होले तृप्त भगत जन जेकरा चरण कमल रज के प्रयोग से
अखिल करम बंधन काटेलन जोगी जन जेकरा सुजोग से।
मुक्त होइके मुनि स्वछंद विचरेलन जेकरा ज्ञानयोग से
कर्म के बंधन का ओकरा जे भगत हेतु धरे तन, न भोग से।। अ0 सर्ग–24–55।।

विधि के रात बराबर रात ऊ महारास में असहीं राजन्! बीति गईल
ब्रह्य मुहूरत आइल बृज–जुवतीन के घरी जुदाई के नजदीक भईल।
ना चाहला पर भी गोपीन के घर जायेके आयसु हरि से मिलि गईल
भगवतप्रिया नारि सभ बृज के गइली अपना घर पोछत दृग गील भईल।। अ0 सर्ग–24–59।।



www.bhojpurisahityangan.com

पच्चीसवें सर्ग में युगलगीत है। कृष्ण की कूजित वेणु से कंकणित,निनादित गोपियों का चित्त प्रतिदिन गायों को चराने के लिए वन में जानेवाले चितचोर के पास चला जाता था। वे आपस में व्यासोदित शब्दों में कहती हैं:– अरी सखी!

वामबाहुकृत वामकपोलो वल्गितभ्रुरधरार्पितवेणुम्।
कोमलांगुलिभिराश्रितमार्गं गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्दः।। श्रीमद्भा010–35–2।।

सखि! मुकुन्द जब बाँया गाल के बाँयी बाँहि प लटकावेलन।
अउर नचावत भहुँआ कोमल ओठ प वंशी ले जायेलन।। अ0 सर्ग–25–03।।

फिर फूँकत वंशी के ओकरा छेद प अंगुरी के फेरेलन।
तान मधुर अतना निकेलेला सकल चराचर सुनि हिलेलन।। अ0 सर्ग–25–04।।

सुनिके मीठ गीत वंशी के सिद्धगणन के पति संग नारी।
आ जाली जा व्योमयान पर नभ में राजन हारि के हारी।
सुनिके तान चकित होके राखेली अंगुरी ओठ के आरी।। अ0 सर्ग–25–05।।

पति के संग रहला पर पहिले मन के हाल देखिके शरमाली।
फिरु ओही छन चित्त में गभते कामबाण मूरछित हो जाली।
इहो ना उनुका सुधि कि खुलल नीवी,सरकल चुनर उठालीं।। अ0 सर्ग–25–06।।

अरी सखी! कतना सुनर बाड़े ई नन्दलाल सुकुवार
हँऽसेलन त हँसी के रेखा बन जाली सन चमकत हार।
छाती पर श्रीवत्स के रेखा अइसन लागेला चटकार
जइसे श्याम मेघ पर बाटे स्थाई बिजुली असवार।। अ0 सर्ग–25–07।।

अपने चितचोर कन्हाई के गायों के साथ वन से लौटते समय निखिललीला विभूति के अखिलसौन्दर्य स्रोत के वर्णनातीत सौन्दर्य पर मुग्ध गोपियाँ आपस में एक दुसरे को कृष्ण की मादक सुन्दरता दिखलाती हैं।

देखऽ सखी कतना मोहक बा
कन्हइया के ई सुनराई।
मदन अँखियन में भरल बा
कँवल पँखुड़ी के ह ललाई।। अ0 सर्ग–25–56।।

सखी गर में बा वनमाला, कनक कुण्डल के पीयराई।
शोभत बा गाल पर जइसे बइरि जब जाला अधराई।। अ0 सर्ग–25–57।।

रोवाँ रोवाँ से फूटत बा बेसी तनी मुँह से खुशहाली।
देखऽ ना अब करत बाड़े संघतियन के बिदा आली।। अ0 सर्ग–25–58।।

आवत बाड़े ऊ जदुपति मस्त
गजपति नियन लहराई।। अ0 सर्ग–25–59।।



www.bhojpurisahityangan.com

देखऽ सखी कतना मोहक बा
कन्हइया के ई सुनराई।।

छब्बीसवें सर्ग में अरिष्टासुर नामक वृषभ का वध/उद्धार, कंश का अपनी कुटिल एवं मारक कूटनीति के तहत बुद्धिमान अक्रूर को व्रज भेजना, केशी नामक महाबलवान अश्व तथा व्योमासुर का वध तथा उद्धार, नारदजी का श्रीकृष्ण के साथ गुप्त सलाह और उनके द्वारा भगवान की स्तुति का वर्णन है। कंश ने जिस केशी असुर को व्रज के विनास के उद्देश्य वहाँ भेजा था उससे देवताओं में भी बहुत भय व्याप्त रहता था। उस अति बलवान केशी को कृष्ण ने ललकारकर पल झपकते ही उसके मुँह में अपना बाँया हाथ डालकर इतना मोटा कर दिया कि टेंटुआ फट जाने से उसके प्राण निकल गये। इससे व्रजवासियों के साथ देवताओं को भी बड़ा आनन्द हुआ।

धउरत बेग से देखिके केशी के लगले कान्हा मुसुकाए।
पेशले बाँया हाथ मुँह में केशी के,बिनु तनि घबड़ाए।
ओसहीं जइसे निधड़क होके साँप बीलि में अपना जाए।। अ0 सर्ग–26–62।।

कर रहुए भगवान के बड़ा ही कोमल कमल के नाल समान
लेकिन असुर के मुँह में भईल लहकत लोहा खम्भ समान।
टूटल दाँत, बढ़ेला जइसे रोग जलोदर बिना निदान
तथा मोटात हाथ से अश्व के टेंटुआ भईल लहूलुहान।। अ0 सर्ग–26–63।।

सत्ताइसवें सर्ग में कंशदूत अक्रूर के द्वारा व्रज के रास्ते में भगवान श्रीकृष्ण के दर्शन की उत्कण्ठा में उनके रूप,लावण्य,गुण एवं ईश्वरीय प्रभाव के वर्णन से विदित होता है कि किसी राजाज्ञा पालन की विवशता वश कुत्सित,विगर्हित लक्ष्य के पथ पर अग्रसर हुआ सात्विक चित्त अवसर पाते ही अपने नैसर्गिक श्रेयस् लक्ष्य को पाने की ललक में किन सात्विक वृत्तियों के सहारे अपने इष्ट के सौन्दर्य,औदार्य,कारूण्य एवं शरणागत वत्सलता की कल्पनोदधि में बेरोक व बेखुद होकर गोते लगाने लगता है।

श्री शुकदेव परीक्षितजी से कहनी अति बुद्धिमान अक्रूर।
राति बिताके भोर में बृज चलले होके रथ पर आरूढ़।। अ0 सर्ग–27–01।।

बृज के राहि में पुष्कराक्ष के परा भगति उनुका में जागल।
सोचले क़वन हमार करम शुभ, तप भा कवन दान फलवासल।
जेकरा फलरूप करबि कृष्ण के बृज में दरसन हम अगरासल।। अ0 सर्ग–27–02।।

लेकिन अधम भी कऽरबि हम भगवान के दरसन बारम्बार।
जइसे कबो बहत तिनका के भी मिल जाला नदी किनार।
ओसहीं कालनदी में बहत कबो केहु हो जाला भव पार।। अ0 सर्ग–27–04।।

कान्तिमान मरकत मणि जइसन बाटे उनुकर कोमल गाल
तोंता अस बा नाक नुकीला, मुसुकी मधुर, ओठ बा लाल।
प्रेम भरल तिरछी चितवन, रतनारे नैन, अँगूठिया बाल
गिरे गाल पर जब जब उनुका शोभा देखिके सभे निहाल।। अ0 सर्ग–27–09।।

सुमुख, सुनर, वर, श्रीनिकेत, अजानबाहु कान्हा, बलराम
नैन खिलल जुग शरदकमल अस, वदन मनोहर जन–अभिराम।
रहुए अभी किशोर अवस्था, गजशिशु अस बल, विक्रम धाम
ललित चलित,नील,श्वेत नलिन जुग जुवक के भाल प लाल ललाम।। अ0 सर्ग–27–31।।



www.bhojpurisahityangan.com

श्रीकृष्ण,बलराम के मथुरा जाने की बात सुनकर गोपियों की उदासी एवं दुःख।

गोपी जब सुनली सन कि आइल बाड़े बृज में अक्रूर।
ले जाये खातिर मथुरा हमनी से राम,कृष्ण के दूर।
तब आकुल भइली ऊठल बाथा करेज के करऽत चूर।। अ0 सर्ग–27–61।।

ताप बढ़ल हिरिदा में लागल चले साँस से पछुआ लूक
कइ जानी भइली अचेत उठला से कोमल हिय में हूंक।
सरकल ओढ़नी, गीरल कंगना,बुदुबुदाके कुछु भइली मूक
आवते ही धेयान भगवान के कुछ के गइल वृत्ति सभ रूक।। अ0 सर्ग–27–62।।

चिंतन करत मुकुन्द के गोपी आगामी बिरहा से भीता।
मिलिके झुण्ड के झुण्ड सजल दृग दीहली ओरहन दइब के तींता।। अ0 सर्ग–27–66।।

धनि बाड़ऽ तोहरा हिरिदा में दया, ना माया तनिक विधाता
पहिले त तू प्रेम, सनेह से जोड़ेलऽ प्राणीन के नाता।
आस, पियासि, भूखासि बढ़ाके जब देखेलऽ रोंवा जुड़ाता
तब नाहक लड़िकन के खेल अस अलग,बिलग करि देलऽ धाता।। अ0 सर्ग–27–67।।

दइब देखवलऽ तू हमनी के अपायिसूनर मुँह गोविन्द के
जेकर करिया बाल अँगूठिया गाल प बाल ना,लर मिलिन्द के।
जे जब आके पियेलन सन नीलकमलमुख सुरभिबुन्द के
तब हमनी के छछनत मन अहकेला भाग प भ्रमरझुण्ड के।। अ0 सर्ग–27–68।।

अब जब मधु से मीठ मुकुन्द अधररस पीहिंती जा फुरसत से
मिलित परम आनन्द छनो भर खातिर उनुका अतुल सुरत से।
ऊहे मृदुल मुसुकान त मिल़ल रहे हमनी खातिर कुदरत से
देखिके उनुके ही अँखियन के बचल रही जा तन रूख्सत से।। अ0 सर्ग–27–69।।

लेकिन अब तू ही अक्रूर के नाम से असल में बाड़ऽ आईल।
तोहरा एह कूरता से हमनी के बा मुँह ओसहीं मउराईल।
जथा कुमुदिनी भोर में चन्द्र दरस बिनु लउकेली कुम्हिलाईल।। अ0 सर्ग–27–70।।

लिख़त रहऽ जब तू संजोग त आँखि तोपाइल का थाकला से
भा का दोसरा के बियोग जोड़लऽ हमनी में भकुअइला से।
आ कि हउवऽ अज्ञ, कि कूरता जोड़लऽ ई अबला रहला से
जे भी होखे कारण दूर त कईलऽ बिधना नन्दलला से।। अ0 सर्ग–27–71।।

देखऽ निहारत रहुईं जा तोहरा सभ दुनिया के सुनराई
श्याम के अपना एक एक अंग में,लेकिन तू कइलऽ निठुराई।
पर अक्रूर के माथे डालिके अपना कूरता के कारवाई
ले जा तारऽ जान निकालिके चलत फिरत शव तन रहि जाई।। अ0 सर्ग–27–72।।



www.bhojpurisahityangan.com

नन्दलाल की भी मथुरा जाने की तैयारी देखकर गोपियाँ उनपर भी नये नये लोगों से नेह लगाने का आरोप मढ़ देती हैं। वे सोचती हैं कि यद्यपि मुकुन्द अपना मन वश में रखते हैं, पर मथुरा में सुसंस्कृत, सुन्दर युवतियाँ अपना जलवा नन्दलाल के पास बिखेरती हुई जब उनका मन खीच लेंगी तब वे हम गँवार ग्वालिनो के पास यहाँ क्यों आयेंगे।

नन्दलाल के भी बा चस्का नेह के नया नया लोगन में।
देखऽ त हमनी के संग इनिकर प्रेम कहाँ गइल छन भर में।। अ0 सर्ग–27–73।।

घर, दुआर, पति,पूत,स्वजन छोड़िके बननी जा इनिकर दासी।
इनिके खातिर आजु हमनि के हिय बा शोकातुर, अतरासी।
लेकिन ई त हमनी ओरि देखत तक नइखन समुझिके बासी।। अ0 सर्ग–27–74।।

जदपि मुकुन्द राखेलन वश में मन लेकिन जुवती गदराईल
लाज से लाल गाल पर मुसुकी,काटत तर के ओठ लसिआईल।
घींचिहें सन जब जबरन इनिकर चित बोलत मीठ,दृगमदिराईल
तब ई लवटिहें काहें गँवई, अबलनि कीहाँ, रमणि अझुराईल।। अ0 सर्ग–27–77।।

का दोसरा के बात, श्याम के भी कम बा काँहवा निठुराई
देखऽ गद से गइलन रथ पर बइठि पसेई बिना कन्हाई।
मदी,घमण्डी मुरुख गोप बाड़न स लबलबात कब जाईं
बड़, बूढ़ उदासीन बाड़े आ बिधना भइलन आजु कसाई।। अ0 सर्ग–27–80।।

चलऽ सोएम ही रोकीं जा अपना कान्हा के ओहिजा जाईल
का करि लीहें बूढ़, बन्धुजन अपने जान प जब बनि आईल।
आधो छन भी सखि मुकुन्द के सम्भव ना रहुए छोड़ि जाईल
दइब के दीहल एह बियोग से बा चित अब अचेत,अकुलाईल।। अ0 सर्ग–27–81।।

अइसन कहत बहुत बिरहातुर गोपीन के मन कृष्ण में लीन
भोर में चलि जइहे ई सोचिके भईल बहुत बेआकुल, दीन।
छोड़िके लाज जोर से डँहकत दामोदर, माधव, गोबीन!
लगली राग से रोवे देखिके आसरा जीवन के छिन भीन।। अ0 सर्ग–27–84।।

इसी सर्ग में बलराम,कृष्ण को मथुरा ले जाने के क्रम में अक्रूर भगवान के दिव्य प्रभाव एवं विभूतियों का दर्शन करने के बाद प्रेम–हर्षातिरेक के साथ उनकी स्तुति करते हैं।

अठाइसवें सर्ग में बलदाऊ, कृष्ण के मथुरा जाने, नगरभ्रमण, धनुष–यज्ञ की तैयारी देखने आदि का प्रसंग है। नागरिकों सा परिधान प्रदान करनेवाले दर्जी तथा अंगराग प्रदान करनेवाली सैरन्ध्री कुब्जा या कूबरी पर भगवान की अहैतुकी कृपा करने का प्रसंग बड़ा रोचक है। कुब्जा पर तत्क्षण कृपा कर भगवान तीन जगहों से टेढ़ी उस सैरन्ध्री कुब्जा को सीधा कर देते हैं। अप्रतिम सुन्दरी तो सैरन्ध्री थी ही,कूबड़पन हटते ही वह परम आकर्षक हो जाती है। तत्क्षण कृष्ण के प्रति उसके हृदय में अदम्य कामभावना जाग्रत हो जाती है। वह लोक लाज छोड़कर सबके सामने ही कृष्ण से मिलन की याचना करने लगती है। इस पर भगवान उसे समझाकर बाद में उससे मिलने का आश्वासन देते हैं।

उचुकवते ही ओकऽर सँवसे भईल सीधा अंग समान
भइल विशाल नितम्ब आ कुच, कटि पातर,नाभि गहिंड़ मय–दान।
छुवते ही मुकुन्द के भईलि सुघर कामिनी, अति मोदमान



www.bhojpurisahityangan.com

हो गईलि ओही छन कूबरी गुणी, उदार, अप्रति–रूपवान।। अ0 सर्ग–28–83।।

मिलन कामना कृष्ण से जागल मन में ओकरा अइसन जोर
सभ के सोझा मुसुकी काटत धइलसि कृष्ण–अंगौछा छोर।
वीरशिरोमणि! चलीं जा घरे, अब ना सहाता मदन हिलोर
अब ना छोड़ि सकबि रउरा के चित मथले बानी बड़ी जोर।। अ0 सर्ग–28–84।।

उन्तीसवें सर्ग में श्रीकृष्ण द्वारा कंश के यज्ञशाला में जाकर खेल खेल में विशाल धनुष–भंग, इससे क्रुद्ध रखवालों,सैनिकों के आक्रमण पर उनका विनाश, धनुष–भंग सुनकर कंश की घबड़ाहट एवं दुःस्वपन, दर्शको द्वारा बलराम,कृष्ण के लीला–गुणानुवाद एवं उनके सौन्दर्य,लावण्य की प्रशंसा, कृष्ण–माधुर्य–मदिरा का निरन्तर पान करनेवाली गोकुल की गोपियों के भाग्य की सराहना, कुवलयापीड नामक महाबलवान हाथी का कृष्ण पर आकंमण तथा कृष्ण द्वारा उसे मारकर एवं उसके विशाल दाँतों को कंधे पर रखकर अखाड़े में जाना, अतिबलवान चाडूर,मुष्टिक का कृष्ण,बलराम द्वारा कुश्ती में वध करने के बाद मंच पर बैठे कंश के साथ युद्ध एवं रणकौशल से उसे पकड़कर मंच से पटककर सायुज्य मुक्ति देकर कंश का उद्धार करने का विस्तृत प्रसंग है जिसके कुछ पद निम्नलिखित हैं।

कृष्ण के देखले से ही प्रेम, मिलन के बेग जागे नारीन में।
रहत रहे ना सुधि कि ठीक से नइखे तन चुनरी,ओढ़नीन में।। अ0 सर्ग–29–1।।

कुवलयापीड हाथी का वध/उद्धार।

गिरते कालसमान कुवलयापीड के धरती पर श्रीकान्त
सिंह नियन खेल खेल में गोड़ से सूंढ़ के ओकरा दीहले जाँत।
इचि सा जोर लगाके तब लीहले उखाड़ि दुनो गजदाँत
काम तमाम ओही से कके कइले हस्ति, महावत शान्त।। अ0 सर्ग–29–49।।

मुवल कुवलयापीड के ओहिजे छोड़िके लेके कान्ह प दाँत
ढुकले रंगभूमि में तब गजदंत से अइसन रहन सोहात।
जइसे श्याममेघ मघवन बिजुली के खड़ग सरूधिर ले हाथ
जात होखसु वृत्रासुर वध खातिर रणक्षेत्र में हँसत,ठठात।। अ0 सर्ग–29–50।।

श्रीकृष्ण का अखाड़ा में प्रवेश।

एगो दाँत कान्ह के कान्ह प दोसर रहे राम के कान्हीं
रहे सुशोभित शस्त्ररूप में जथा काल के होखे आन्हीं। अ0 सर्ग–29–51।।

ढुकले रंगभूमि में दाऊ, कान्हा जवना घरी भींड़ में।
पहलवान के लउकल जइसे बजर ही आइल बा शरीर में।। अ0 सर्ग–29–53।।

राम, कृष्ण के मुखमाधुरि के पीयत तृप्ति ना रहुवन पावत।
मानो नैन से पीयत, नाक से सूँघत, चाटिके जीभि लफावत।
बाँहि से भरि अँकवारी लेके निज निज रहन करेज जुड़ावत।। अ0 सर्ग–29–62।।

चाडूर तथा मुष्टिक का उद्धार।

कके संकलप बध खातिर चाणूर आदि खल के भगवान।
भिड़ले खुद चाणूर के संगे मुष्टिक संग दाऊ बलवान।। अ0 सर्ग–29–82।।



www.bhojpurisahityangan.com

असहीं दाव, पेंच करि एक दूजा के ठेलत, दूरि ढकेलत
जांघ पर ताल देत,फिरू उछड़िके एक दूजा के मेंजी पेरत।
उठाके दुनो हाथ से चरखी अस जोड़ी के हवा में फेरत
पटकिके पेटकुनिया जोड़ी के चीत करे ला रहन घुलेटत।। अ0 सर्ग–29–85।।

लिहले तुरत पकड़ि चाडूर के दुनो बाँहि खीझल मुरलीधर।
हवा में घीरनी नियन घुमाके दीहले पटकि कृष्ण धरती पर।। अ0 सर्ग–29–117।।

मरि त रहुए गइल घुमावत खा ही पहलवान चाडूर
फाटल फूंट नियन धरती पर गिरला से ऊ कंश के शूर।
छितराइल माला, घुधुराइल केश ओकर धरती पर दूर
लागल गीरल इन्द्र के पूजा में गाड़ल झण्डा मशहूर।। अ0 सर्ग–29–118।।

असहीं पहिले जब घूँसा मरलसि मुष्टिक तब अतिबल राम।
जड़ले एक तमाचा भभकत खून गइल मुष्टिक जम्हुधाम।। अ0 सर्ग–29–119।।

कंश का वध/उद्धार।

कंश मनस्वी देखलसि मउवति के जब मंच प आइल नियरा।
तमकिके खड्ग,ढाल ले लिहलसि जदपि डेराइल ओकर जियरा।। अ0 सर्ग–29–129।।

मोका लागल खोजे चोट करे खातिर लेके तलवार
बदलत रहे पैंतरा करे ला असि से कृष्ण प बड़हन वार।
नभ में उड़त बाज अस जाये कबो दहिन कऽबो बँयवार
भाँपिके चाल सटीक कृष्ण भी खोजत रहुवन वार–सुतार।। अ0 सर्ग–29–130।।

ह भगवान के तेज प्रचण्ड आ दुस्सह, जइसे गरूण भुआल!
पलक झपकते झपिलाके लेबे ले पकड़ि गरलधर व्याल।
ओसहीं लिहले पकड़ि बलाते भोजराज के करिया काल।। अ0 सग–29–131।।

गइल गीरि ओह घरी कंश के माथ के मुकुट, केश छितराईल।
लिहले पकड़ि केश ओकर केशव मारे खातिर खखुआईल।
दिहले रंगभूमि में ऊँचा मंच से पटकि, कंश छपिटाईल।। अ0 सर्ग–29–132।।

फानिके मंच से भोजराज के देहि प चढ़ि गइले विश्वाश्रय।
चढ़ते विश्वसाधुजन द्रोही कंश प्रान से भइल निराश्रय।। अ0 सर्ग;29–133।।

कुदते कृष्ण के देहि प कंश के प्रान के बत्ती ओकर बुताईल।
मुवलो पर भी कृष्ण घसेटे लगले कंश के, लोग चिहाईल।
ओसहीं यथा घसेटे ला करि के मृगराज कुपित, अनसाईल।। अ0 सर्ग–24–134।।

तीसवें सर्ग में कंश एवं उसके अनुयायी खल,दैत्यों के विनास के बाद कंश की विधवा नारियों को कृष्ण ढाढस बंधाते हैं। इसके बाद कारगार से अपने नाना उग्रसेन,माता एवं पिता देवकी,वसुदेव को मुक्त कर इन सभी को एवं अपने पालनहार माता,पिता यशोदा,नन्द आदि को अपनी मधुर वाणी से जगत पालनहार श्रीकृष्ण संतुष्ट करते हैं।



www.bhojpurisahityangan.com

फिर नाना उग्रसेन को, सिंहासनारूढ़ होने के ययाति के शाप से मुक्तकर, मथुरा का राजा बनाकर राज–काज में सहयोग देने का वचन देते हैं। कृष्ण,बलराम यज्ञोपवीत के बाद सांदीपनि मुनि के गुरूकुल में वेदादि के अध्ययन के बाद गुरू के इच्छानुसार उनके मृत पुत्र को गुरूदक्षिणा के रूप में सौंपते हैं। अब वे अपना दिया हुआ वचन पूरा करने के लिए सैरन्ध्री कुब्जा एवं अक्रूर को उनके घर जाकर उन्हें कृतार्थ करते हैं। इन घटनाओं से कुछ संबंधित पद द्रष्टव्य हैं। यहाँ उल्लेख्य है कि कुब्जा से भगवान श्रीकृष्ण अंगराग मात्र ही पाकर उसकी पार्थिवेच्छानुसार उसे उसके घर जाकर आनन्दित किये किन्तु महायोगियों को दुर्लभ कैवल्यमुक्ति के दाता भगवान मुकुन्द को अपने क्रोड में पाकर भी उस सैरन्ध्री कुब्जा ने केवल मदन सुख को ही अभीष्ट समझा एवं इसी कारण व्यासजी ने उसकी निन्दा कर उसे दुर्भगा कहा है।

कंश के डर से हेने होने भागि गइल जे रहुवन लोग
ओह यदु,वृष्णि,दार्शाह,कुकुर,मधु आदि के खोजववले भरि लोक।
फिर सत्कार, सान्तवना दीहले जानिके दुख, उत्पीड़न, शोक
अपना अपना घर में बसवले देके मन माफिक धन,भोग।। अ0 सर्ग–30–20।।

हवुए श्रीमुकुन्द के वदन सदन आनन्द के, दृग रतनार
ना कुम्हिलायेवाला कमल एकर सुनराई अतुल, अपार।
चुवेऽला रस प्रेम के ओठ से जब मुसुकाले बृज सरकार
चितवन,मुसुकी से चितचोर के निसिदिन मगन बा देखनिहार।। अ0 सर्ग–30–22।।

श्रीमुकुन्द के मुखारविन्द के अमियसमान अधररस पीके।
बूढ़ भी भ गइले जवान, बल, ओज भइल सभ के नवही के।। अ0 सर्ग–30–23।।

अब अइले जा नन्द कीहां देवकी नन्दन बलराम, कन्हाइ।
लगुवन कऽहे जा बाबा से भरि अँकवारी,गले लगाइ।। अ0 सर्ग–30–24।।

देखीं कवनो कारणवश संतान तजे जे पितु,महतारी।
ओकर करे जे लालन,पालन अपना पूत नियन उपकारी।
ऊहे असल में होला मातु,पिता,सम्बन्धी अरू हितकारी।। अ0 सर्ग–30–26।।

तात! बिरज अब जाईं रउरा सभ रखिके हमनी पर नेह।
पूतजनित सुख के बिनु होई दुख रउरा अति निस्संदेह।
कऽके एहिजा के कुटुम्ब के सुखी आइबि जा रउरा गेह।। अ0 सर्ग–30–27।।

भगवान का कुब्जा के घर जाकर उसके अभीष्ट सुख को देना।

कके याद बात कुबरी के राखे खातिर मन सुनरी के।
गइले मिलन के सुख देबे ला कान्हा घर छछनत कुबरी के।। अ0 सर्ग–30–56।।

सउँसे रस के महा समुन्दर के ही रस बा सभ रसगर में
कामी कामी के रस पाके खोजेला सुख नारि–अधर में।
ब्रह्मचर्य ओही रसबल से, ज्ञानि खोजे रस परात्पर में
बहुत कहीं का बंधन,मोक्ष के इंधन ''..रसो वै सः''नटवर में।। अ0 सर्ग–30–57।।

तब कूबरी कऽके असनान पहिरिके कीमती रेशमी साड़ी



www.bhojpurisahityangan.com

केशर, अंगराग, आभूषण, हार, इत्र, से सजि धजि भारी।
पान सुगन्ध जड़ित खाके मुसुकात बुझात मदन के नारी
आइलि नया मिलन से तनी लजाइल जहाँ रहन बनवारी।। अ0 सर्ग–30–68।।

मन के दशा देखि कूबरी के लिहले पकड़ि कलाइ कन्हाइ।
बइठवले सेजरि पर कूबरी के जे गइलि रहे सकुचाइ।। अ0 सर्ग–30–69।।

फिर तनी बात से झिझक तूरिके मदन खेल कइले शुरूआति।
कूबरी भी अब लेके कृष्ण के चरणकमल उरोज से साटि।
लागलि काम के आगि बुतावे सिसिकारत जइसे हो भाँथि।। अ0 सर्ग 30–70।।

रहुए मदन बिआधि बढ़ल कूबरी के बहुत दिनन से भारी।
बाँहि में कुच सटाके कृष्ण से बिरहाइल, दुर्भगा बेचारी।
कैवल्यी मुक्तिदाता से लिहलसि सिरिफ मदनसुख नारी।। अ0 सर्ग–30–72।।

जेकरा दरस परस खातिर योगीजन, ज्ञानी, भगत अनेक
जनम जनम तप,योग,निरत रहलो पर झलक ना पावसु देख।
बस कूबरी के अंगराग से होके तुष्ट श्रीपति नरभेख
रहन सछात कूबरिकोरा में तबो ना जागल विमल विवेक।। अ0 सर्ग–30–73।।

कहलसि कमलनैन!रतिसुख राउर नइखे अभी छोड़ल जात।
रहिके अउरी कुछ दिन क़रीं मदनखेल रसिया हमरा साथ।
पाके राउर अधरनलिन घीव नइखे काम के आगि बुतात।। अ0 सर्ग–30–74।।

ब्रह्मा आदि समस्त ईश्वरन के भी ईश्वर विष्णु उरूक्रम।
कईल उनुका के प्रसन्न बा बहुत कठिन,बा बहुत परिश्रम।। अ0 सर्ग–30–76।।

कके उनुका के प्रसन्न जे मांगे विषय जनित सुख,भोग।
निश्चितरूप से बा दुर्बुद्धि, अभागा, अति निन्दा के जोग।। अ0 सर्ग–30–77।।

भगवान का अक्रूर के घर जाना।

झुकाके सिर फिर कृष्ण के कइले नमस्कार सविनय अक्रूर।
लेके गोदी गोड़ दबावे लगले करे ला बाथा दूर।। अ0 सर्ग–30–84।।

एकतीसवें सर्ग में श्रीकृष्ण के कहने से उनके मित्र उद्धव व्रज की यात्रा करते हैं। रास्ते में व्रज एवं चरने के बाद व्रज लौटती लिए गायों, बछड़ों की शोभा आदि देखकर आनन्दमग्न होकर वे व्रज की सराहना करते हैं।

एक दिन अपना प्रिय साथी एकान्तप्रेमि उद्धव के हाथ।
लेके अपना हाथ में कहले अपना सखा से मन के बात।। अ0 सर्ग–31–03।।

सौम्यस्वभाव संघतिया उद्धव जा तू बृज हमार प्रिय धाम।
बाड़े ऊहाँ हमार पिता, महतारी नन्द, जशोदा नाम।। अ0 सर्ग–31–04।।

करऽ आनन्दित उनुका के तू देके सखा हमार सनेस।
गोपी लोग के भी जे बाड़ी हमरा बिरह से भोग़त कलेश।। अ0 सर्ग–31–05।।



www.bhojpurisahityangan.com

होत रहे गधबेर सरेह से लवटत रही स बृज में धेनु।
धूरि उड़त रहुए पहिले अस पर ना रहे त कृष्ण के वेणु।। अ0 सर्ग–31–16।।

रिमुमति गऊवन खातिर लड़त रहन सन साँढ़ मस्त, मदनाईल
थोरहीं दिन के बिआईल गऊवन के रहुए नृप! थान चुराईल।
कूदत, माकत अपना अपना बछरून के ओरि जात धधाईल
गाई चुवावसु दूध कि जेकरा से धूरि रहुए जात सनाईल।। अ0 सर्ग–31–17।।

उजर रंग के बछरू कूदत माकत लागत रहन स नीक।
गाइ दुहे के घर्र घर्र शब्द आ बँसुरीन के निकलत मीठ पीक।
रहे बढ़ावत अबो भी बृज के अनदेखल शोभा रमणीक।। अ0 सर्ग–31–18।।

रहुए बाबा नन्द के हिय में ऱंग कृष्णानुराग के गाढ
जब कइले एक एक उनुका लीला के नैन के सोझा खाड़।
तब आइल बाबा के हिय में कृष्ण प्रेम के उमड़त बाढ़
बहे जे नैन से, गदगद कंठ भइल, भइले चुप होके खाड़।। अ0 सर्ग–31–41।।

रही सुनत जसुमति ओहिजे चुपचाप बइठिके नन्द के बात।
सुनि सुनि कृष्ण के एक एक लीला रहुए उनुकर नैन लोरात।
पूत नेह बढ़ला से छाती. रहुए दूध बहावत जात।। अ0 सर्ग–31–42।।

बत्तीसवाँ सर्ग मेंरे इस प्रबंधकाव्य का हृदय है एवं काव्यदृष्टि से इस प्रबंध की कथा एक तरह से इसी सर्ग से पूर्णता–climax को प्राप्त कर जाती है। मथुरा से पधारे भगवान माधव के सखा उद्धव को जब गोपियाँ अपने प्रियतम जैसे रूप,परिधान एवं हाव–भाव में देखती हैं तो कुछ देर के लिए भ्रम में पड़ जाती हैं। बातचीत से उन्हें जब पता लगता है कि उद्धव के हाथों उनके प्रियतम माधव ने उनके विरह–विकल, प्रेमोर्मि–उद्वेलित हृदयस्थं विरहाग्नि से उत्पन्न उत्ताप के विमोचन के लिए कोई संदेश भेजा है, तब वे बड़ी उत्सुकता से अपने प्रियतम श्रीकृष्ण के संदेश सुनने की उत्कण्ठा से उन्मत्त सी हुई उन्हें आम आवागमन से रहित किसी एकान्त रमणीय स्थान में ले जाकर पहले अपने हृदयोद्गार को मुखरित करती हैं। तभी किसी गोपी की अपने समीप मड़राते हुए एक कृष्णभ्रमर को उपलक्षित कर अपने प्रियतम कृष्णविरहप्रसूता प्रीत्याभिव्यन्जना उलाहना के रूप में प्रस्फुटित होती है। उस श्रीकृष्णविरहार्द्र गोपी का यह प्रेमरसोद्रेक भागवत में भ्रमर–गीत के रूप में बहुत विश्रृत है और गोपिभाव रसिकों का श्रीकृष्ण के पराप्रीति से सान्द्रित विरहरसोदधि है, जिसमें वे मुक्तियानन्द को भी सादर उपेक्षितकर अनवरत गोता लगाने के बाद भी श्रीकृष्ण के असीम,अनन्त आनन्ददायी उस रसामृत से तृप्त नहीं होते हैं।

उद्धव और गोपियों की बातचीत।

पता चलल जब रमारमण के हवन बहुत नजदीकी यार
आइल बाड़े लेके प्रीतम कृष्ण के कुछ सनेस बरियार।
तब लजात, मुसुकान भरल चितवन अरू विनय से करि सतकार
देके आसन तनी इकोरा कहली जा हिय के उदुगार।। अ0 सर्ग–32–06।।

जानत बानी जा हईं रउरा पार्षद जदुपति रमासदन के।
लेके उनुके ही सनेस कम करे ला मातु पिता के गम के।
आइल बानी ना त गोब्रज में अब का बा चिन्हि सनम के।। अ0 सर्ग–32–07।।



www.bhojpurisahityangan.com

रिषि,मुनि भी बड़ि दीकि से तजेले नेह बन्हन माता,पितु,हित के।
दोसरा के संग नेह होखेला साधे ला अपना कुछु हित के।। अ0 सर्ग–32–08।।

मरदन के नारीन संग, भँवरन के फूलन संग नेह संबंध।
होला अइसन ही, टुटि जाला होते खतम जवानि, सुगन्ध।। अ0 सर्ग–32–09।।

कतनो भी पवित्र, सच्चा अनुराग नारि के हिय में होखे।
काम बना लेला पर उलटि के भी त जार मरद ना देखे।। अ0 सर्ग–32–15।।

ई कहते कहते गइली सन भूलि कि बात का उचित,का हीन।
कवन बात केकरा सोझा कहेके चाही समय अधीन।। अ0 सर्ग–32–16।।

रहन जवन कइले लीला बचपन, किशोर तक श्याम रंगीला।
ओह सभ के क कऽके याद गावे लगली जा गीत रसीला।। अ0 सर्ग–32–17।।

होके आत्मविभोर भूलि गइली जा नारि–सुलभ सभ लाज।
सुसुकत, सुसुकत डँहकी,पँहकी पुका फारिके ए महराज!।
लगली फूटि फूटिके रोवे भइल ऊहाँ गमगीन मिजाज।। अ0 सर्ग–32–18।।

एगो गोपी याद करत रहुई तब सनम से मिलन के लीला।
देखली निगिचे बाटे गुनगुनात एगो भँवरा मस्त, रंगीला।। अ0 सर्ग–27–19।।

सोचलसि ऊ गोपी कि रूसऽल जानिके श्याम पिया हमरा के।
भेजले बाड़े दूत मनावे खातिर बेदरदी बिसराके।। अ0 सर्ग–32–20।।

भ्रमरगीत :–

सनम के बेवफाई के कवनो गम नइखे।
सितम त कइले मगर प्यार से ई कम नइखे।। अ0 सर्ग–32–21।।

ऊ भी करिया तू भी करिया गजब के जोड़ी बा।
ऊ भी कपटी, तू भी कपटी ई असही थोड़ी बा।
उनुको तोहरे नियन वफाई के कसम नइखे।। 22।।
सनम के बेवफाई के कवनो गम नइखे।
सितम त कइले मगर प्यार से ई कम नइखे।।

सूनी अँखिया, बथे छतिया जबसे केहू रूसल बा।
सुखल देहिया बिनु सनेहिया जइसे लहू चूसल बा।
छोड़िके सवतीन के केहू लवटी एकर भरम नइखे।। अ0 सर्ग–32–26।।
सनम के बेवफाई के कवनो गम नइखे।
सितम त कइले मगर प्यार से ई कम नइखे।।

जबसे गइले सून कइले साज ए दिल जानम।
बिथ्कल चह्कल, हँसी सहकल, आँखि रहेला नम।
ऊहे कंगना ऊहे पायल पर ऊ छमछम नइखे।। अ0 सर्ग–32–27।।



www.bhojpurisahityangan.com

सनम के बेवफाई के कवनो गम नइखे।
सितम त कइले मगर प्यार से ई कम नइखे।।

गोपियाँ आगे कहती हैं:–

सुनऽ लागल जेकरा भी चसका उनुकर कबो जदि एकबार।
चहलो पर ना छोड़ि सके चर्चा उनुकर अस ह रसदार।। अ0 सर्ग–32–50।।

एह से चर्चा सनम के ना छुटी कबो
जान जाए, रहे भा, सितम, गम मिले।
उनुकर रस ही बा अतना अनोखा,मधुर।
अब ना भुक्ति, ना मुक्ति,ना अमृत मिले।। अ0 सर्ग–32–51।।

पा जाए एको बून लीलामृत गर केहू,
सिलसिला–ए–गम,खुशी,लगन,नफरत छुटे।
केहु मुफलिस घर,बार,भा जहाँ छोड़िके।
पंछी अ़स चुनिके दाना गुजारा करे।। अ0 सर्ग–32–52।।

बाकिर छोड़े ना छलिया के सोहबत कबो।
अब सरग भा नरक भा जनम फिर मिले।। अ0 सर्ग–32–53।।
उनुकर रस ही बा अतना अनोखा, मधुर।
अब ना भुक्ति, ना मुक्ति,ना अमृत मिले।।

फिर उद्धव के सामने सिसकती गोपियों का यह रसानुसान्द्र हृदयोद्‌गार स्वज्ञानाभिदृप्त उद्धवजी के समक्ष इस प्रकार प्रस्फुटित होता है:–

. कब ले आई दिन ऊ लवटिके दुबारा।
जब सनम के लउकी मुँह कँवल ऊ प्यारा।। अ0 सर्ग–32–65।।

गोदी लेके दीहिते अधर मदिर धारा।
जी जाइत नस नस तन, मन के सारा।। अ0 सर्ग–32–66।।

मीठि मीठि मुसुकान उनुकर चितवन कुटिल।
देखते होत रहुए हमनी के त हियरा चोटिल।। अ0 सग– 32–67।।

करे घक् से करेज उनसे मिलते नजर,
धरसु पतरी कलइया त सिहरे जिगर।। अ0 सर्ग–32–68।।

का कहीं हो एकरा आगे के इशारा।
नइखे जात कहल मीत उनुकर प्यारा।। अ0 सर्ग–32–69।।

उद्धवजी के मुँह से अपने प्रियतम का संदेश सुनने के बाद गोपियों में से एक गोपी कहती है:–

अरे सखी कहलसि एक गोपी मोहिनी कला के बड़का ज्ञानी
हउवन श्यामसुनर हमनी के, जब मथुरा के सुघर जनानी।
मीठ मीठ बतियावत, काटत प्यारी मुसुकी सलज,सुहानी



www.bhojpurisahityangan.com

देखिहें सन उनुका के तब काहें ना रीझिहें काटत चानी।। अ0 सर्ग–32–129।।

का कबो केशव याद करेले शरद के मधुमति राति सुहानी
रहुए जेह में खिलल कुमुदिनी, कुन्द के फूल,राति के रानी।
चटक चाँदनी, वृन्दावन रमणीय, फूलन पर ओश के पानी
ओही राति के रास में हमनी संग नचले खुलिके, मनमानी।। अ0 सर्ग–32–131।।

कहली जा उद्धव से गोपी सुनी कृष्ण के सखा सुजान।
प्रीति, ज्ञान के कहाँ इयारी प्रीति रही तहँ का करी ज्ञान।। अ0 सर्ग–32–147।।

ज्ञान के बात अब जनि करीं उधो जी!
ज्ञान ज्ञानी के भीरी ही शोभेला।
प्रेम के तीर जेकरा बा कसिके के लागल
ऊ त दिन–रात कँहरेला, रोवेला।। 148।।

अब थक हारकर गोपियाँ कृष्ण को कहती हैं–हम मानती हैं कि आप पर मथुरा के राज काज का भार आ गया है। परन्तु मथुरा से पुनः व्रज आने के अपने संकल्प को यादकर आप एक छण के लिए तो हमलोगो के पास आ जाते। हमारा गोब्रज मथुरा से है ही कितनी दूर। जो आप हमलोगों के वक्षःस्थलों सटकर मीठी मीठी बातें करते थे, ऐसा क्या हुआ कि आपने हमलोगों से यहाँ से चाँद की सी दूरी बना ली है। उनका यह मार्मिक निवेदन इस प्रबंधकाव्य का शीर्षक गीत है।

अइतऽ छनो भर खातिर ए कन्हाई।
ना त नेहिया के होई जगहँसाई।। अ0 सर्ग–32–167।।
अइतऽ छनो भर खातिर ए कन्हाई।।

वादा कके गइल रहुवऽ
नन्दगाँवे अइबऽ।
हमनीं के बिरहा के
अगिया बुतइबऽ।। अ0 सर्ग–32–168।।

दीहलऽ ऊधो से सनेसा भेजवाई।
बाकिर अइलऽ नाही कहिके हरजाई।। अ0 सर्ग–32–169।।

एके डेग रहिके कइलऽ
चान जइसन दूरी।
जानत होइबऽ तू हीं
बड़ुए कवन मजबूरी।। 182।।

दिल पर जोर तोहारा कब ले ठटाई।
नेह के ज्वालामुखी कबो फाटि जाई।। 183।।
अइतऽ छनो भर खातिर ए कन्हाई।।

. अतना कहिके लगली जा गोपी सभ फिर से रोवे डँहके।
अधम श्रीदास भी सुसुकेला कि बृज ना गइनी हरि जी कहिके।। अ0 सर्ग 27–178।।



www.bhojpurisahityangan.com

श्रीकृष्ण के प्रेमोदधि में डुबती उतराती गोपियों का अत्यंत निर्मल एवं अटूट प्रेम निवेदन देख सुनकर उद्धवजी को श्रीकृष्ण के ज्ञान संदेश और अपने भी विपर्यय रहित असंदिग्ध ज्ञान को गोपियों पर प्रभावी होने का भ्रम सूर्योदय के बाद चाँद और जुगुनुओं के प्रकाश के निष्प्रभावी होने के समान गायब हो जाता है। यह प्रसंग इस प्रबंधकाव्य के अंतिम तैंतीसवें सर्ग में है। गोपियों का अपने प्रीतम श्रीकृष्ण के प्रति अप्रतिम प्रेमाभक्ति को उनके हृदयोदधि की गहराई में सतत संचरित,सवंर्धित होता हुआ अनुभव करते हुए उद्धव उनका चरणरज अपने मस्तक मूर्धा पर लगाकर गोपियों एवं उनकी प्रमुख आराध्या श्रीराधा रानी की विरह वेदना का निवेदन लौटकर मथुरा जाने के बाद श्रीकृष्ण के सामने इस प्रकार करते हैः–

फिर भगवान से फुरसत में कहले गोपीन के प्रेम आ ओरहन।
सुनिके डूबले गोपीन के प्रेमनदी में प्रेम के सागर मोहन।। अ0 सर्ग–33–32।।

अब तनि मातु,पितादि, गोपीन के प्रेम के सरिता में उतराके।
पूछे लगले कृष्ण उद्धव से बात मन ही मन नन्दपुर जाके।। अ0 सर्ग–33–33।।

कहले राधा जीयत नु बाड़ी
हमरा ना बृज रहला पर।
कइसन चलत बा गोपी लोग के
जीवन मधुपुर अइला पर।। अ0 सर्ग–33–34।।

सुनिके प्रश्न श्रीकृष्ण के उद्धव डूबिके देखल बृज झांखी में।
कहले नाथ नाम जे लीहनी हा ऊ भरि मन निज आँखी में।
देखिके सफल बना लीहनी हम जीवन, जनम लीहल माछी में।। अ0 सर्ग–33–50।।

देखनीं हा हम पूण्य–प्रसून से भरल परम गति वृन्दावन के।
जे बा भारतवर्ष के मुकुट–किरीट,साररूप सभ जन–जन के।। अ0 सर्ग–33–51।।

देखनीं अति रमणीय रास मण्डल ओही रस–गर्भित वन में।
ओकर सारभूता गोलोक निवासीन गोपीन के तनु तन में।। अ0 सर्ग 33–52।।

देखनीं परात्परा राधा के जे सभ गोपीन के भी सार।
बइठल रही कदलिवन बीचे कमल सेजरि जल पांकीदार।
सभ गहना मणि,रत्नाभरण से रहित लउकली खिन्न, बेमार।। अ0 सर्ग–33–53।।

ऊजर वस्त्र पहिरले रहुई, रहुए देह मलिन,दुबराईल।
रहुए पेट पीठि में धँऽसल काहें कि छोडले बाड़ी खाईल।। अ0 सर्ग–33–54।।

हाँफेली ऊ छन छन भर पर साँस लेबे में बा कठिनाई।
सखि ललितादि बराबर उजर चँवर से करेली जा सेवकाई।। अ0 सर्ग–33–55।।

ए हरि! अतना बिरह–ताप से छनभर भी का जीहें राधा।
अरे उनुका त जल,थल,रजनी,दिवस के भान ना,तन बस आधा।। अ0 सर्ग–33–56।।

के मनुष्य, के पशु , के आपन, के ह पराया ईहो ना ज्ञान



www.bhojpurisahityangan.com

होके बहरी ज्ञान रहित रउरे बस चरण कमल के धेयान।
नित्य निरंतर करेली राधा उनुकर उज्ज्वल यश, श्रीमान्
करत बा हरि! त्रिलोक के जगमग मउवति भी उनुकर कीर्तिमान।। अ0 सर्ग–33–57।।

राधा से ना बढ़िके भगत ना केहु राउर भइल, ना होखी।
पर श्रीनाथ! राधा अनाथ अब जतना बाड़ी, ना केहू होखी।। अ0 सर्ग–33–59।।

रितु वसंत, चमकत हिमांशु, वायु–सुगन्ध राधा के डाहे।
लोर भींजावे अंगिया, ओढ़नी बिरही कोमल करेज कराहे।। अ0 सर्ग–33–60।।

देली चन्दरमा के ओरहन जालऽ जस जस होखत सेयान
ओतने देहि जरावे ल तोहरा त नइखे तनिक धेयान।
कि प्रियतम अब नइखन एहिजा तबो तू ऊहे रास मेहमान
भइल रहे ल, का बाडऽ उनुका बेरूखी से अनजान?।। अ0 सर्ग–33–61।।

जब जब वायु सुगन्ध ले आवे कहेली तू त निरे अज्ञानी।
बिरही के दुख अउर बढ़ावे इत्र सुगन्धित, राति सुहानी।
जा उनुके के करऽ सुगन्धित काटेलन मथुरा में चानी।। अ0 सर्ग–33–62।।

आवेलन सन जब जब भँवरा गुनगुनात कदली के वन में
कहेली राधा उहनी से कि अब नइखे सुगन्ध एह वन में।
जानत रहुवजा सुगन्ध, मकरन्द बा खीलल फूल के तन में
लेकिन अज्ञानी सुनिलजा कृष्ण ही सुरभि, सुगन्ध फूलन में।। अ0 सर्ग–33–63।।

सोना नियन देहि रहे चमकत ऊ अब बा काजर अस करिया।
सोना अस झप झप ऊ केश अब भूवर,भूंण बा मगज के जरिया।। अ0 सर्ग–33–65।।

उत्तम पहिरन ना पहिरेली छोड़ले बाड़ी सभे सिंगार।
रउरा प्रेम के जल बिनु सूखल राधा के हियप्रेम इनार।। अ0 सर्ग–33–66।।
लेकिन सुनि लीं राधा जइसन करेली राउर भक्ति महान।
ओइसन कवनो जगे ना दोसर बाड़न भगत सुनी भगवान।। अ0 सर्ग–33–68।।

रहेली राधा जतना रउरा प्रेम–भक्ति में नित आसक्त।
लक्ष्मी सोएम भी रहेली ना ओतना हरि रउरा में अनुरक्त।। अ0 सर्ग–33–69।।

लोर बहे नैनन से रहि रहि, निकले ना कुछु
मुँह से बात मोहन के, चुप रहन कुछु देर तक।
सुनिके गोपीयन के तड़प,प्रेम दुनिया उपर, श्याम
साँस छोड़त लमहर बइठल रहसु अबेर तक।। अ0 सर्ग–33–75।।

अब भागवत मर्मज्ञ महापुरूष और त्याग–वैराग्य–प्रेमाब्वार्द्र ज्ञानी उस असीम,अनन्त ब्रह्माण्ड के अभिन्न निमित्तोपादान कारण के स्वस्वीकृत उस विवशता पर अपनी सख्यभावनानुरूप कुछ प्रकाश डालना चाहेंगे, जिसके कारण सर्वचराचरकारण नन्दनन्दन सम्पूर्ण ब्रज के कण कण से प्रेमसलिलाभिषिक्त,सुलालित,



www.bhojpurisahityangan.com

सुपोषित,सर्वसुसमादृत,सर्वसुसेवित क्या, सभी के हृदय ही होकर भी मथुरा के राज–काज में सहयोग से थोड़ी फुर्सत लेकर मथुराप्रवास के लिए रथारूढ़ होते समय गोपियों को दिये आश्वासन को साल,महीने,पक्ष,सप्ताह,दिन,घण्टा,मिनट क्या एक छण के लिए भी मथुरा से कुछ ही दूर स्थित नन्दब्रज आकर पूरा क्यों नहीं कर पाये। और फिर द्वाराकाधीश होने एवं श्रीलक्ष्मीस्वरूपिणी रूक्मिणी,सत्यभामादि पटरानियों से सदानुरंजित एवं सुसेवित रहने के बावजूद कदाचित् उनसे छिपकर अपनी मानुषीलीला के अवसान तक माता यशोदा,बाबा नन्द व राधा सहित सभी गोपियों के अप्रतिम प्रेम–विरह में सतत अश्रुपात करते रहे। श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध उत्तरार्ध के बेरासीवें अध्याय में सर्वग्रास सूर्यग्रहण के अवसर पर कुरूक्षेत्र में गोपियों का अपने प्रियतम श्रीकृष्ण से मिलने और वार्तालाप का प्रसंग आया है। तब तक श्रीकृष्ण के व्रज ललनाओं–गोपियों से शारीरिक रुप से अलग रहते हुए लगभग सौ वर्ष बीत चुके थे। उनके पार्थिव कलेवर पर वार्धक्यचिन्ह स्पष्टरुप से प्रकट थे, पर उनका कृष्णप्रेमानुराग उसी तरह,कदाचित् उससे भी अधिक नूतन,कमनीय तथा प्रियतमक्रोड के लिए लालायित था। लेकिन उस मिलनस्थली में तब न व्रज निकुंज थे, न वृन्दावन और न भाण्डीर वन की वह घनी छाया और न वह परम पवित्र रासमण्डल, जहाँ श्रीकृष्ण गोपियों के साथ विहार,प्रेमालाप किया करते थे। अपने माता,पिता स्वजनों से मिलने के बाद जब श्रीकृष्ण ने सुना कि सम्पूर्णग्रास सूर्यग्रहण में कुरूक्षेत्र में पवित्र स्नान के लिए उनकी परमप्रिया गोयियाँ भी आयी हैं तो वे उनके शिविर में उनसे मिलने के लिए गये। उन्होंने गोपियों को सखी शब्द से ही संबोधित किया और अपने प्रिय स्वजन–संबंधियों के अपरिहार्य कार्य को करने के लिए ब्रज से बाहर इतना समय व्यतीत हो जाने के लिए अपनी सफाई दी। उन्होंने गोपियों के मन में उनके प्रति अकृतज्ञ होने की आशंका का निवारण करते हुए कहा कि वास्तव में भगवान का पूर्वरचित विधान ही प्राणियों के संयोग एवं वियोग का कारण होता है। ऐसा कहते हुए श्रीकृष्ण ने श्रुति–शास्त्र के रुप में अपने ज्ञानस्वरुप से गोपियों के उस अन्तर्मन को बोधने का प्रयास किया, जो ब्रज में उनके प्रेम से उद्दीप्त होकर उनके विरह में कुम्हार के आंवे की तरह अन्दर ही अन्दर सुलग रहा था। और उसने अब उन नन्दनन्दन श्रीकृष्ण के ज्ञान–वारि से बने विरहार्द्र जलवाष्प से अनुवेष्टित होकर कदाचित् शान्त सा दिखता उम्र के वार्धक्यरुपी उस पड़ाव पर प्रियतम के अदम्य प्रेम के लिए अपने स्थूल,सूक्ष्म तथा जीव कोशरुपी लिंग या कारण शरीर का ढांचा छोड़कर सदा के लिए प्रियतम के हृदय को आर्द्र करते हुए समुद्र में नदियों के मिलन सा अपने विरह संताप को क्या, अपनी सत्ता को ही उन श्रीकृष्ण में एकाकार कर लिया। तब क्या सचमुच प्रेमियों, विदग्ध हृदय कवियों और पराप्रेम–पिपासुओं का प्रेम ज्ञान–मोक्ष,कैवल्य की समादृत उपेक्षा कर केवल विरह–विदग्ध प्रेमानुभूति में अपने अस्तित्व का साफल्य समझता है? तब क्या प्रेम मिलन से नहीं, वियोग–विरह के ताप से उद्दीप्त,उर्जित,अनुरंजित एवं अनुतृप्त होकर वियोगजनित तड़प में ही अपने अस्तित्व, अपने विरहवेदनोद्भूत रसानुभूति एवं उसकी पवित्रता की परात्परता का अक्स अपने अश्रुजनित अगाध जल में देखकर उस करुण रसरुपी आनन्द में सदा के लिए डूबना चाहता है?, जिसकी सर्वोपाधि,निखिलस्पन्दन रहित उपलब्धि वेदान्त मनुष्यरुपी अत्युत्तम योनि का परमलक्ष्य बतलाता है। एक साथ अतिसरल एवं अतिजटिल इस प्रश्न से प्रपूरित मेरा यह भोजपुरी महाकाव्य इन तैंतीस सर्गो में भगवान श्रीकृष्ण के ज्ञान एव प्रेम स्वरूप के यथामति–यथाशक्ति वर्णन के साथ करुणरसाभ्यार्द्र होकर विश्राम लेता है। हिन्दी की यह भूमिका इस महाकाव्यागत ज्ञान,भक्ति,दर्शन के तत्वों के साथ साथ श्रीवैष्णवों के सर्वस्व आलवारों एवं भक्ति–ज्ञान–प्रपत्ति के देदीप्यमान स्रोत, संवर्धक तथा संवाहक महापुरूषों के संक्षिप्त वृत्तों व मतों का प्रसंगवश उल्लेख से कुछ बृहत् अवश्य हो गयी है, परन्तु आशा है सुधी एवं सहृदयी पाठक इस भोजपुरी प्रबंधकाव्य में भगवान की तात्विक एवं मानुषी लीलाओं का आनन्द लेकर इस प्रबंधकाव्य में दास की अयोग्यता के बावजूद अनुचित साहसप्रभूत धृष्ठताओं, प्रबंधकाव्यागत विभिन्न प्रकार की त्रुटियों एवं अक्षमताओं को वैसे ही क्षमा कर देंगे जैसे अभीष्ट वस्तु पाकर लोग उसके लिए हुए श्रम एवं परेशानी को अनायास भूल जाते हैं।

-श्रीभगवान मिश्र श्रीदास।



www.bhojpurisahityangan.com

# भूमिका/प्रस्तावना :

## “अइतऽ छनो भर खातिर ए कन्हाई”

## (भोजपुरी प्रबंधकाव्य)

This Hindi Bhumika is one of four prefaces namely भूमिका in Hindi,Preface in English,आपन बात in Bhojpuri and रचनाप्राक्कथनम् in Sanskrit pertaining to the भोजपुरी प्रबंधकाव्य-अइतऽ छनो भर खातिर ए कन्हाई written by me-श्री भगवान मिश्र श्रीदास.The said Bhojpuri Epic is based on entire दशम स्कन्ध पूर्वार्ध of SrimadBhagwat Mahapurana written by the great Ved Vyas, SriKrishnadwaipayan.

श्रीमद्भागवत एवं ब्रह्मवैवर्तपुराण पर आधारित मेरा यह भोजपुरी महाकाव्य भोजपुरी साहित्य में अपने तरह की अकेली रचना है,जिसके बारे में विभिन्न रचनाधर्मियों ने मुझे अवगत कराया है। परात्पर ब्रह्म श्रीराधाकृष्ण की कृपा से ही ऐसा सम्भव हुआ है। उल्लेखित चारों भाषाओं में मेरी स्वलिखित भूमिकाओं में उक्त महाकाव्य के अनुशयी तथ्य एवं कथ्य अपने अपने वैशिष्ट्यों के कारण ध्यातव्य,रोचक एवं पठनीय हैं। महाकाव्य में प्रयुक्त विभिन्न छन्द लीक से कुछ हटकर,जीहवास्निग्धतानुपठितव्य एवं अपनी सामग्री को स्वतः व्यक्त करनेवाले हैं,ऐसा मेरा तटस्थ अनुसंधान है। आगे आपकी यह महती एवं अपने वैविध्यपूर्ण तथा समालोचकीय बृहदायाम में अद्वितीय संस्था का समीक्षकीय दृष्टिकोण ही भोजपुरी साहित्य में इसके महत्व एवं उपादेयता का संकेत कर सकता है।

श्रीभगवान मिश्र श्रीदास